प्रथम अध्याय

क- विषय प्रवेश

खः ग्रंथ का परिचयात्मक अध्ययन
(क) विषय प्रवेश -

कथाओं का भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। ये कथाएं अपने सरल एवं प्रभावपूर्वक उपदेशों से जनसामान्य के जीवन को उन्नति की ओर अग्रसर करती है। यह उन्नति आचारपर्वत है। इन कथाओं में नैतिकता के सन्दर्भ पदे-पदे दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृत साहित्य में अमूल्य कथा निधि सुरक्षित है। इस साहित्य का विकास क्रमशः वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि विविध भाषागत अवस्थाओं एवं युगों में हुआ। वैदिक संहिताओं में कथाओं के तत्त्व प्राप्त होते हैं। मनु संहिताओं के संवाद सूक्तों में भारतीय साहित्य को समृद्ध करने वाली सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। यहीं नहीं ब्राह्मण ग्रन्थों एवं आरण्यकों में कथाओं तथा आद्यानों का बहुत देखा जा सकता है, रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य कथा साहित्य की विपुल सम्पदा से आपूर्ति है। पौराणिक युग में कथा साहित्य को अधिक महत्त्व मिला, उसमें कथाओं
का मौखिक रूप में अस्तित्व में बना रहा।

आज भी रामायण और महाभारत की कथाएं वर्मा (म्यांमार), थाइलैण्ड, कम्बोडिया, श्रीलंका, इण्डोनेशिया आदि देशों में प्रचलित हैं। ये कथाएं जहां मानव जीवन के नैतिक विकास में सहायक हुई हैं, वहीं सामाजिक समस्यातंत्र भी इनके द्वारा हुई है। नैतिक दृष्टि से की गयी उन्नति सामाजिक समस्यातंत्र और मानव जीवन के विकास में किसी प्रकार बाधक नहीं होती, इन दोनों ग्रन्थों की सम्पूर्ण समाज में मान्यता है। यही नहीं, इन ग्रन्थों को इन देशवासियों ने अपनी-अपनी लिपियों में लिखना और पढ़ना जान-जान में इसका प्रचलन आज भी देखने को मिलता है।

पंचतन्त्र और हितोपदेश जैसी कथाओं ने तो सुदूरवर्ती पश्चिम को अपने प्रभाव से अछूता नहीं छोड़ा। आज भी अरब देशों में फारसी और अरबी भाषा में इनके अनुवाद सुरक्षित हैं। इस विवेचन से यह मत लिया जा सकता है कि भारतीय साहित्य ने कथा-तत्त्व पश्चिम साहित्य से ग्रहण किया है। इसलिए कथा साहित्य का उद्भव भारत में ही हुआ और यही से अन्य देशों में इसका प्रचार और प्रसार हुआ।

बौद्ध धर्म ने भी कथा के माध्यम से उपदेशों की पद्धति को अपनाया, क्योंकि नीतिपरक उपदेशों का भण्डार इन कथाओं में निहित है। अधिकांश विद्वान बौद्ध धर्म को आचारपरक ही मानते हैं। इन विद्वानों का मत है कि बौद्ध धर्म दर्शन की अपेक्षा नीतिशास्त्र पर अधिक बल देता है। यद्यपि आचार्य अश्वघोष ने काव्य के माध्यम से बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार किया है, किन्तु बौद्ध साहित्य में जातक और अवदानों के
माध्यम से भी धर्म के प्रचार एवं प्रसार की कम नहीं आँका जा सकता।

‘जातक’ शब्द संस्कृत जात (जन्म) से निष्पन्न हुआ है। जातक का अर्थ उस कथा से लिया जाता है जिसमें बोधिसत्व अपने पूर्व जन्मों में पारमिताओं का अभ्यास कर बोधि प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार जातक का शब्दार्थ बोधिसत्व कथाएँ हैं।

एको कर्म और जेट्ट्यो स्पेर जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति संस्कृत जात शब्द से स्वीकृत तो अवश्य की है किन्तु इनका ‘जात’ से आशय है- जो बीत चुका है अथवा घटित हो चुका है।

दूसरी ओर आरो सीबो चाइल्डर्स के अनुसार ‘जातक’ भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाएँ हैं। बोधिसत्व का अर्थ है - जो प्राणि बोधि प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। बौद्ध परम्परा के अनुसार कोई भी बुद्ध हो सकता है।

शाक्य मुनि बुद्ध केवल एक जन्म में ही बुद्ध नहीं हुए अपितु उन्होंने अनेक जन्म ग्रहण किये। वे कभी देवता के रूप में, कभी कपियों में, कभी शाश योनि में कभी गजयोनि आदि तथा पशुओं के रूप में बार-बार उत्पन्न हुए हैं। इन सभी जन्मों में उन्होंने पारमिताओं का अभ्यास किया। छह पारमिताओं के अभ्यास के अन्तर ही वे बुद्ध हुए। पारमिता का अर्थ ही “पारमि” (पूर्णता) है। बोधिसत्व की ये कथाएँ पूर्णजन्म और कर्म के सिद्धान्त से जुड़ी हुई हैं। पालि जातक कथाएँ ५४७ हैं। ये कथाएं अत्यधिक प्रभावोत्पातक हैं। तथागत के जीवन में ऐसे अनेक अवसर आए हैं जब उन्होंने घटना विशेष का प्रत्याश कर पूर्व जन्म के वृत्तान्त का समरण किया है। उन
बुधवारों के माध्यम से भगवान तथागत भिक्षुओं और अनेक श्रोताओं को सुनाकर
वर्तमान के साथ भूत का सामंजस्य स्थापित करा दिया करते थे।

अतीत से वर्तमान का यही सामंजस्य जातक कथा का स्वरूप धारण कर लिया
करता था। इन कथाओं के वैशिष्ट्य का इसी से पता चलता है कि इनमें समाज के
विभिन्न वर्गों के लोग, पशु, पशुओं, नदी, पर्वत, देवता आदि सभी को समान रूप से
स्थान प्राप्त था। पालि जातकों के अतिरिक्त संस्कृत में आर्यशूर-विरंचित 'जातकमाला'
है जिसमें भत्तीस कथाओं का संकलन है। इसे 'बोधिसत्त्वबादन माला' के नाम से जाना
जाता है। अवदान भी जातकों के सदृश ही हैं, क्योंकि इनके प्रमुख पत्र बोधिसत्त्व होते
हैं।

'कुमारलातकृत' 'कल्पनामण्डिलिका' भी इसी प्रकार का ग्रन्थ है। जातकमाला
और कल्पनामण्डिलिका के अतिरिक्त अवदान ग्रन्थों में अनेक जातकों का उल्लेख है।
कुछ जातक अवदान तो खण्डित रूप में मध्य एशिया में मिले हैं। इसके अतिरिक्त
मध्य एशियाई बोलियों में भी जातक और अवदान साहित्य का भण्डार खोजने पर प्राप्त
किया जा सकता है।

अवदान शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। सामान्यतः इसका प्रयोग
वीरतापूर्ण कार्यों के अर्थ में अधिकांश स्थलों पर मिलता है। कभी-कभी पालि अपदान
के अर्थ में भी इसका प्रयोग हुआ है। 9 इसी अर्थ में यह संस्कृत में भी यत्र-तत्र देखने

1. हि. इण्ड. लि. भाग-२
को मिलता है। अवदान शब्द व्याख्या की दृष्टि से “निदान” शब्द के पर्याय रूप में भी प्रयुक्त हुआ है, यथा -

“लोकार्थमित्यभिसमीक्ष्य करिष्यतेज्ञ।
श्रुत्यार्थयुक्तयविगुणेन पथा प्रवलना।
लोकोत्तमस्य चरितातिशयप्रदेशः
स्वं प्रलिमं गमयितुं श्रुतिवल्लभत्वम्॥”

“दद्यान्न दद्यादिति तत्र नासी -
द्विचारदेलालचलमान सास्त्री ।
व्यालाने हि वहूव तत्समान्
विस्रृण्मू भगुष्ट्प्रणयोर्धिवर्गः॥”

बौद्ध मतानुयायियों ने भी इस शब्द का कथन धार्मिक, नैतिक अथवा शिक्षात्मक रूप में किया है। वे बौद्धमतानुयायी प्रायः प्रस्तावना स्वरूप अवदानों के अन्तर्गत भूतकाल की कथाओं को वर्णित करते थे और अन्त में कथाओं के समापन के बाद अपने सिद्धांतों को स्थापित करके नैतिकता की भी शिक्षा भी देते थे। पालि जातकों में भी यह नियम सर्वत्र देखा जा सकता है-

“अक्कोठेन जिने को यथा, असाधु साधुना जिने।
जिने कदरिय दानेन, नघेनालिन्कवादिन्।

9. जा. भा., 1/12, 4/2
एतादिसो अर्थ राजा, मग्ना उद्याहि सारधीति।

इस प्रकार जहाँ पालि जातक एवं अवदानों में नैतिकता के पदे-पदे दर्शन होते हैं, वही सामान्यतः अवदानों में अतीत और वर्तमान की कथाओं का संकलन है। बोधिसत्त्व अतीत की कथाओं के नायक होते हैं और यदि दूसरे शब्दों में कहें तो उन कथाओं को जातक भी माना जाता है। कहीं-कहीं तो "अवदान" शब्द का प्रयोग ल्याग, चैत्य निर्माण तथा पुष्प आदि के दान स्वरूप हुआ है। अवदान कथाओं में कर्मनुसार फल की प्राप्ति का वर्णन मिलता है। इन्हें वर्तमान कर्मों का अतीत और अनागत कर्मों से सन्निकट सम्बन्ध होता है। हमारा आलोच्य ग्रन्थ "विवाहदान" भी इसी प्रकार का ग्रन्थ है जिसमें ३८ अवदानों का संकलन है।

अवदान और जातक दोनों का लगभग समान उद्देश्य है। ये बुद्ध द्वारा उपविष्ट धार्मिक कथाएं हैं। बुद्धोपदेशों में ये दोनों ही समाहृत हैं। यही नहीं इन दोनों का लक्ष्य भी प्रायः एक जैसा है। यदि एक ओर दोनों का कर्म की अप्रतिहत और व्यापक शक्ति में विश्वास रखना है तो दूसरी ओर सदृ-कृत्यों के माध्यम से श्रोतागणों के मस्तिष्क में यह विश्वास भी पैदा करना है कि सदृ का फल सदृ सदृ ही होता है। अन्ततः केवल इतना ही है कि अवदान कथाओं में प्रधान पात्र स्वयं बुद्ध ही होते हैं, जबकि जातक कथाएं बुद्ध के विगत जीवन से समन्वित होती हैं। चीनी याञ्जी इ-सियस्त के अनुसार

1. राजोवाद, जातक
2. जेड. आई. आई. पृ. १०५, १०२५
अवदान और जातकों की बीज्ज साहित्य रचनाओं का एक चरण महायान में है तो दूसरा हीनयान में।

‘अमरकोश’ में अवदान शब्द अच्छे कर्म-वृत्त के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अवदान केवल बीज्ज-वाद्य से ही सम्बद्ध नहीं है अपितु बाल्मीकि, कालिदास जैसे महाकवियों की कृतियों में वीरतापूर्ण या महत्वपूर्ण कायों के रूप में भी इसका प्रयोग दृष्टव्य है -

“नैनैक्तद्युमध मन्त्रवन्मुने: प्राप्तदशमवदान तोषितात्।
ज्योतिर्न्यमनिपाति भारकरात्पूर्वकान्त इव ताडकान्तकः॥”

कुमारसम्भव में भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग मिलता है -

“विष्णुदुःखप्राप्त हरे: प्रीवणे: सहुगीयमाननिपुराववदानः।
अध्यानमधवांविकालक्ष्यूषस्ततार ताराधिपखण्डधारी॥”

कालिदास के समान दण्ड ने भी इसका प्रयोग वीरतापूर्ण अथवा महत्वपूर्ण कायों के लिए किया है -

“त्याद्य साधुतोन्मीलितेति तद्ग्रामस्तत्त्पूर्वो -
वदनेभ्यो न रोचते।”

1. इंतेंडुं ताकाचुनु का अनुवाद, पृ. २२, २४
2. अमरकोश ३/२/३
3. रघुवंश, १/२१
4. कुमार सम्भव ७/४८
5. दशकुमार चरित (उत्तर पीठिका भिन्नय उच्चवाद)
अवदान का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में भी होता है जिसके अन्तर्गत भगवान बुध अतीत काल के व्रतांतों का उल्लेख करने के स्थान पर अनागत के विषय में भविष्यवाणी करते हैं। अतीत की सामान्य कथा के समान, भविष्य की यह कथा वर्तमान कर्मों की व्याख्या करती है। इस प्रकार की कथाओं को “व्याकरण” की संज्ञा दी गयी है। इसके अतिरिक्त अन्य अवदानों में दोनों प्रकार की कथाओं का मिश्रण पाया जाता है। यही नहीं कुछ ऐसे अवदान भी प्राप्त होते हैं जिनमें कर्म को आधार मानकर वर्तमान जीवन के पुण्य अथवा पाप फलों को प्रदर्शित किया गया है।

संस्कृत/संकर संस्कृत में प्राप्त बौद्ध-वाङ्मय को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं - (१) सूत्रसाहित्य (२) आचार्यों द्वारा लिखित शास्त्र (टीकाकार, तर्ककार, काव्य नाटक आदि) और (३) कथा-साहित्य। सूत्र साहित्य की व्यापकता सम्मानित करती है किन्तु आज तक प्राप्त साहित्य को दृष्टि में रखकर उसके परिवार का आंकलन करने में यह प्रायः समूचे बौद्ध संकर-साहित्य का एक चौथाई भाग ही होगा। अनेक आचार्यों द्वारा कई शताब्दियों से विरचित ग्रन्थों की संख्या भी बहुत बढ़ी है। उनमें भी आज अनेकों अप्राप्त हैं। उसी प्रकार कथा-साहित्य भी प्रायः एक चौथाई अथवा एक पंचमांश भाग ही होगा। यह साहित्य ही मध्य एशिया की कई बोलियों में खण्डित रूप में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त कितने ही अवदान चौहू और लिखनी अनुवादों के रूप में उपलब्ध हैं जो अभी तक अन्य लिपियों में प्रकाशित नहीं हुए। अवदान साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों की चर्चा यहीं इष्ट है -
अवदान शालक:—

धर्मीवर ९ द्वारा विशिष्ट यह अवदान अवदान-साहित्य का प्राचीनतम संग्रह है। २ यह सी कथाओं का एक संकलन है जिसे दश वर्गों में विभाजित किया गया है। इसमें बुद्धत धार्मिक्य की शिक्षा देने वाली कथाओं का उल्लेख हुआ है। कुछ कथाओं में अपूर्ण कर्म करने वाले दुःखमय व्यक्तियों की यातायात एवं कष्टों का भी वर्णन प्राप्त होता है। अवदान-शालक के प्रत्येक वर्ग में कथाओं की संख्या दश है और प्रत्येक वर्ग का अपना वैशिष्ट्य है जिसमें विषय विशेष का प्रतिपादन हुआ है। पहले वर्ग में तथा तीसरे वर्ग में बुद्ध तथा चतुर्वेद बुद्ध के विषय में व्याख्या (भविष्य कथन) का उल्लेख प्राप्त है। कथा संख्या चतुर्वेद द्वारा अतिरिक्त द्वितीय तथा चतुर्वेद वर्ग के अवदानों में भगवान बुद्ध के विषय में विषय जीवन का वर्णन किया गया है। द्वितीय तथा चतुर्वेद वर्ग में क्रमशः वर्तमान और अत्तर जीवन की व्याख्या है और इसी कारण से चतुर्वेद वर्ग की कथाओं का जातक कथाओं से अधिक समानता है। इसके पंद्रह वर्ग में प्रति कथाओं का उल्लेख है। वर्तमान वर्ग की कथाएं ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख करती हैं जिनके द्वारा सत्कर्मों के पृथ्वी-फल-स्वरुप स्वरूप को अलंकृत किया गया है। कथा-नायकों के अर्थात् प्रास्तुत का उल्लेख सत्तम-वर्ग से दशमो-वर्ग पर्यन्त कथाओं में वर्णित है।

सत्तम वर्ग में जिन कथाओं का उल्लेख है उन सभी के नायक शाक्य कुलोत्पन्न हैं। अष्टम्-वर्ग में कथाव-नायक के लेख में स्त्री-पात्रों का वर्णन किया है। नवम्-वर्ग में

१. संस्कृत च अवदानकारक श्लोकश्रुतिः धर्मीवर्गाचार्य पूर्वमिवानों प्राकृतिक-अवदान शालक।
२. संस्कृत। बुध्विश्व लिट. आफ नेपाल, पृ. १७
कर्मशास्त्र आवरण करने वाले व्यक्तियों का वर्णन है। दशम-वर्ग की कथाएँ अतीत
जीवन में आचरित पापाचरण के दुष्करणों को उल्लिखित करती हैं जिनके कारण
दिव्यावत्माओं को भी अंतिम जन्म में दुख भोगना पड़ता है। अवदानशतक की
कथा-संख्या पंचम विलुप्त है। इसकी अंतिम कथा अशोक एवं उपगुप्त के काल से
सम्बंधित है।

कर्मशास्त्रकः

कर्मशास्त्रक एक प्राचीन अवदान कृति है, जिसका अवदान शतक से अत्यधिक
साम्य है। इसके अंतर्गत कर्म सम्बन्धी सो कथाएँ उप-निबंध हैं परन्तु दुर्भाग्य से यह
अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। यह तिब्बती एवं चीनी अनुवादों में उपलब्ध है।
अवदान शतक से इसका साम्य होने के कारण इसे उसकी सहोदरी कहा जा सकता है।
इन दोनों ग्रन्थ रचनाओं की विषय-गुणी में भेद होते हुए भी इनके विषय प्रायः समान ही
हैं। फिर महोदय ने दोनों रचनाओं की सामान्य अनुरूपता को प्रकाशित किया है जो
निम्न विवरणानुसार स्पष्ट है -

अवदान शतक -

1. पुर्णभ्र: 2. कुसीद: 7. पद:  
8. पुष्पाशः 13. स्नातमू: 32. कवड़:  
47. जात्यन्धा 50. जम्बाल: 52. ढंढ़: 10
कर्मचारकः

अवदान शतक से कर्मचारकः के अभोलिखित संख्या वाले अवदान साम्य रखते हैं

44, 46, 46, 104, 44, 47, 71,
48, 61, 7, 33, 61, व 8, 60

अवदान शतक, अवदान संख्या ५० तथा ५८ आशिक रूप से कर्मचारकः की क्रमशः अवदान संख्या ७५ तथा २४ के समान है। कर्मचारकः की कथाओं की सम्पूर्ण निकाय आदि अन्य रचनाओं में भी देखी जा सकती है।

दशाकृतिगुल्मः

यह अवदान ग्रन्थ मूल संस्कृत रूप में उपलब्ध नहीं है। तिब्रती-अनुवाद में यह सुरक्षित है। विश्व साहित्य में यह 'The Wish Man and The Fool' नाम से विख्यात है, जिसका 'I. J. Schmidt' द्वारा जर्मनी भाषा में भी अनुवाद किया गया है। इसके एक चीनी स्प्रांटर का भी पता चलता है।

1. हिस्ट. ऑफ इण्डिया, भाग २, प्र. २८४, footnote १. हिस्ट. ऑफ इण्डिया, प्र. ५३
2. पीटरसन, १८४३
3. जे. ए. आर. एस. (सातक्तक) १५०१ पृ० ४२७
(ख) दिव्यावदान का परिचयात्मक अध्ययन—

‘दिव्यावदान अद्वितीय साहित्य का महत्त्वपूर्ण मुद्दा है जिसमें दिव्य अद्वितीय संकल्प का संचालन है। यह अद्वितीय अद्वितीय शतक के बाद की रचना है, इसके अन्तर्गत कुछ मूल ग्रन्थों का भी समावेश हुआ है। डाँ ० केवल तथा नील के द्वारा ही इसके मूल संस्कृत का सम्पादन हुआ है। ९ Burnout ने अपने इतिहास ग्रन्थ में इसके विशाल ग्रन्थांशों का अनुवाद किया है। २ जे. एस. स्पेयर द्वारा इस पर आलोचनात्मक टिप्पणियाँ भी प्रकाशित की गयी थीं। इसकी चार कथाओं का जर्मन में भाषानुवाद H. Zimmar ने किया था। ३ इस कृति का शीर्षक पूर्णस्पष्ट अनिष्टित है। अतः यह केवल कुछ हस्तलेखों की पुस्तिकाओं में ही प्राप्त होता है। राजेन्द्रलाल भिक्चु ने इसके एक हस्तलेख का निरूपण दिव्यावदान—माला नाम से किया है। दिव्यावदान से आशिक रूप से साम्य रखने वाले एक वेदिक-हस्तलेख का भी उल्लेख मिलता है। इसका नवीन संस्करण डाँ ० पी. एल. वैद्य द्वारा प्रकाशित हुआ है। एक हस्तलेख का निरूपण किया है। इसका नवीनतम संस्करण डाँ. पी. एल. वैद्य द्वारा प्रकाशित हुआ है।

1. नामकरण—

“दिव्यावदान” २८ अद्वितीयों का संग्रह हैं। कुछ अद्वितीय अति विश्वसूत कुछ मध्यम तथा कुछ लघु आकार वाले हैं। दिव्यावदान दो शब्दों के योग से बना है—दिव्य

1. कैस्मिर - ५२६
2. इंट्रोग० पृ० हिस्ट्रो आफ इपिडो बुड्डिमा।
3. मुवेन - ५२५
+ अवदान। ‘दिव्य’ का अर्थ है - चमकृत और अवदान का अर्थ है - पराक्रम पूर्ण कृत्य।

बौद्ध धर्म संस्कृत-साहित्य में अवदान का अर्थ-पराक्रमपूर्ण कृत्य प्राप्त होता है। किंतु बौद्ध संस्कृत साहित्य में अवदान शब्द का प्रयोग किसी धार्मिक या नैतिक स्मरणीय, साहित्यिक या महत्व कर्म के अर्थ में हुआ है। इस प्रकार का महत्त कर्म स्वजीवनार्पण हो सकता है या स्वर्ण रत्न पुष्पादि का दान अथवा स्तूप चैत्यादि का निर्माण।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी सकल संसार में आध्यात्मिक जागृति एवं वैचारिक क्रांति के लिए प्रसिद्ध है। इसी समय चीन में कन्फूसियस और लाओस्ट का, यूरोप में पाइथागोरस, सुकरात और अफलातून का, ईरान में जराबस्त का, इजराइल के नबियों का और भारत में महावीर और बुद्ध का प्रादर्शण हुआ। ये सभी विचारक अपने-अपने भू-प्रदेशों में जनमानस को आध्यात्मिक चेतना से उद्वेलित करने में प्रयत्न थे। बुद्ध का संदेश भारत भूमि तक ही सीमित न रहकर चीन, जापान, श्रीलंका, कम्बोडिया, वियतनाम, बर्मा (म्यांमार) लाओस, तथा थाइलैण्ड आदि देशों तक फैला। आज सकल विश्व में बौद्ध धर्म के मतावलम्बी पाये जाते हैं। बौद्ध धर्म की यह विश्व व्यापकता भगवान बुद्ध के असाधारण व्यक्तित्व की परिचयक्षण है। वेदों में प्रचलित वक्तीय हिंसा, कर्मकाण्ड, विविध अन्त्रविश्वास, जातिवाद, वर्णव्यवस्था आदि के विरोध में ही बौद्ध धर्म का उदय हुआ। इस धर्म ने सदा से त्रस्त मानव जाति के लिए औषधि का कार्य
किया है। बीच वाद्यम सब प्रकार की संकीर्णताओं से रहित है। इसमें कहीं भी जालिगत ऊच-नीच को स्थान नहीं दिया गया है। वर्ण भेद एवं रंगभेद को इसमें कहीं भी प्रश्रय नहीं दिया गया है। इसमें सम्पूर्ण विश्व को अखण्ड राष्ट्र बनाने की प्रेरणा है। आवाह एवं विवाह में यह परम्परागत रूपों का समर्थक नहीं है। यह सभी प्रकार से शान्ति का समर्थक है। मनुष्यों के अन्दर जो कुछ हीन है, जो कुछ धुर्र है, जो कुछ नीच है उसे ही इस वाद्यम में मार या श्रीतान कहकर फटकारा है तथा पूर्णतया मार को जीतने का आदर्श इसमें निहित है।

सुभाषित की दृष्टि से बीच वाद्यम का स्वाध्याय होना अति आवश्यक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से तो इसका विशेष महत्व है। सम्पूर्ण बीच वाद्यम के भीतर संस्कृत वाद्यम की अपनी विशेषता है। इसमें कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जिन्हें पालि प्रवचन के अध्ययन से नहीं जाना जा सकता है। भारत की उत्तरी सीमाओं को पारकर मध्य एशिया, चीन, जापान तथा कोरिया में जो बीच वाद्य फुड़क था वह संस्कृत का बीच वाद्य था। पालि वाद्यम दार्शनिक दृष्टि से उत्तरा समृद्ध नहीं है, जितना संस्कृत बीच वाद्यम। जातकों के आख्यानों के माध्यम से बोधिसत्व साधना की झलक भर मिलती है। महायान, मन्त्रयान एवं सहज साधना का ज्ञान बिना संस्कृत बीच वाद्यम के नहीं हो सकता।

बीच परम्परा तीन धर्मचक्र-प्रवर्तनों को मानती है। प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन की देशना भगवान पुजार ने सारनाथ में पंचवस्त्र सिम्हुओं के लिए दी। इसमें श्रावकयान तथा
प्रत्येक बुद्धवाण का उपदेश दिया। श्रवणकाण श्रीताओं तथा शिष्यों का मार्ग था। ये सद्धर्म की शिश्वा बुद्ध और उनके शिष्यों से प्राप्त कर अन्यजनों को उसमें निपुण करते थे, जबकि बुद्धवाणी स्वकल्याणांर्थ बोधि प्राप्त करते थे। ये दोनों देशाना ही हीनवानी थीं।

दूसरी धर्मांक प्रवर्तन की देशाना भगवान तथागत ने राजगृह के निकट गुप्तकृत पर्वत शिखर पर दी। उन्होंने भिष्म-भिष्मुणियों, बोधीसत्वों, देवपुत्रों, बहा, नागराज, किन्नर, गरुण तथा गन्धवर्ण आदि के लिए यह देशाना दी। इसमें उन्होंने बोधिसत्ववाण का उपदेश दिया। इस बोधिसत्ववाण के पथिक जनकल्याणांर्थ जन्म-जन्मान्तरों तक सर्ववेत्ता को प्राप्त करते हैं। इस बोधिसत्ववाण को ही एक मात्र बुद्धवाण माना गया है। इस लोक में एक ही यान है, द्वितीय एवं तुलीय अन्य कोई यान नहीं है। भगवान तथागत द्वारा जो नाना यानत्व की देशाना की गयी है, वह तो उपवास मात्र है। भगवान लोकनाथ तथागत बौद्ध ज्ञान के प्रकाशनाथ लोक में उपस्थित होते हैं। वे अन्य कोई कार्य नहीं करते हैं।

सद्धर्मपुण्डरीक में इस बात का अभिव्यक्त किया गया है-

“एक हि यानं द्वितीयं न विद्यते तृतीय हि -

नैवासित कदाचि लोके।

अन्यनुपायं पुरुषेऽतमानं यद्युवाणनानात्तुपुंस्यन्तिः॥

बौद्धस्य ज्ञानस्य प्रकाशनाथं लोके समुपस्यति लोकनाथं॥

एकं हि कार्यं द्वितीयं न विद्यते न हीनवाने न यन्ति बुद्ध॥” ॥

1. सद्धर्म पु: - २/२४ - ५५
तृतीय धर्मचक्र प्रवर्तन की देशना भगवान ने दक्षिण में धान्यकटक पर्वत पर दी।
यह तात्त्विक देशना थी। यह तन्त्रयान ही मन्त्रयान, वज्रयान, श्रीकलचक्रयान एवं सहजयान आदि नामों से जाना गया। ये सभी अवस्थाएं तन्त्र साधना जैसी हैं। इस
शरीरम्य में सहजयानी सिद्धों की वाणिज्य का भाषा, धर्म एवं दर्शन की वृद्धि से कुछ अधी
यन हुआ है। सिद्धों की वाणिज्यों अप्रणश में हैं, किन्तु उन पर संस्कृत टीकाएं
उपलब्ध हैं। इन वाणिज्यों का तुलनात्मक अध्ययन कर रहस्यवादी प्रवृत्तियों को उजागर
किया जा सकता है।

इन तीनों धर्मचक्रप्रवर्तन में से प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन की भाषा पालि तथा अन्य
दोनों की संस्कृत थी। मनुष्य के अन्दर जो भी कुछ छुद है, जो कुछ हीन है, एवं नीच
है, वही मार अथवा शीतल है। मनुष्य के अन्दर स्थित मार कहीं काल्पनिक को न फैलाने
लगे, इसलिए इस वाद्येय के अध्येता के लिए यह संकेत है कि जो वाद्यों अर्थवर्त हो
अर्थात प्रयोजक साधक हो, जो धर्म भावना के पदों से युक्त हो, जो अर्थक के मज्जों
का प्रशालन करने में समर्थ हो जिसमें शान्ति की अनुसार दिखाई गयी हो, वही आर्थ
वाद्य है, वही बुध्रोपदेश है, इसके विपरीत जो वाद्य है, वह अनार्थ है अर्थात
बुध्रोपदेश या कुछ वचन नहीं है।

“यदर्धित्वाधिन पदोपसहितं त्रिधारातुसंकलेशनिवर्गां पशुः
भवेच्छा वद्यचार्युणाशसिद्धां तदुक्तमार्शिनिवर्गितमस्या ॥”

9. शैव च २० वि २० ४३२
भगवान तथागत ने जन कल्याणार्थ धैर्यासार्थ वर्षों तक चारिका करते हुए जनसामान्य को साधारण बोलचाल की भाषा में उपदेश दिये थे, जो कि आज पालि भाषा के नाम से जानी जाती है। वैयाकरणों ने, इसे मागधी कहा है। भगवान के सभी उपदेशों के संकलन को त्रिपिटक की संज्ञा से अभिहित किया गया। त्रिपिटक का अर्थ तीन पिटारियों से है, यथा - ‘सुत्तपिटक’, ‘विनयपिटक’, ‘आभिधम्मपिटक’।

**सुत्तपिटक:**

इसमें भगवान ने विविध जनों को चारिका करते हुए विभिन्न स्थानों पर अपने उपदेश दिये हैं। इसके पाँच भेद हैं –

1. दीघ निकाय 2. मण्डलमनिकाय 3. संयुक्तनिकाय 4. अज्जुगुत्तनिकाय

5. खुदाकनिकाय

**विनयपिटक:**

विनय शब्द वि+नय से मिलकर बना है। वि का अर्थ है – विशेष प्रकार का तथा नय का अर्थ है ले जाना। अर्थात विशेष प्रकार से उत्थान की ओर ले जाना। इस पिटक में संघ में जीवन व्यतीत करने वाले भिक्षु एवं भिक्षुणियों के लिए कथा कर्तव्य है। इसका पूर्ण विवरण मिलता है। यह पाँच भागों में विभक्त है –

पाराजिक, पाचितिय, महावर, चुल्लवर तथा परिवार।
अभिधाम्मपिटकः

अभिधम्म दो शब्दों से बना है- अभि और धम्म। ‘अभि’ का अर्थ विशेष और ‘धम्म’ परामर्श के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके अन्तर्गत सात ग्रन्थ संकलित हैं। इस ग्रन्थ में महायान, कथावल्ली, विभिन्न पुनःपुनःस्वरूपित, धातु कथा, यमक और पद्मानुष। इस पिटक में भगवान के दाश्विनिक उपदेश संग्रहीत है।

संस्कृत भाषा सदैव विद्वज्ञानों की भाषा मानी गयी है। संभवतः इसी कारण बौद्ध और जैनों ने भी इस भाषा में अपने अपने ग्रन्थों का प्रणयन किया। बौद्ध संस्कृत वाङ्मय अति विशाल है, संस्कृत भाषा के एक महत्वपूर्ण अंश का प्रथम शताब्दी से दसवीं शताब्दी में अनुवाद हुआ था एवं भोट भाषा में सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के बीच अति विश्वसनीय भाषात्मक किया गया था। दसवीं शताब्दी के बाद यह वाङ्मय कोरिया तथा, जापान में बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ पहुँचा, पेशिया में इस वाङ्मय का प्रथम शताब्दी से प्रवेश हुआ, मंगोलिया में यह भोट देश से गया। मूल संस्कृत में इस वाङ्मय का एक अंश नेपाल से प्राप्त हो चुका है।

इस प्रकार सकल बौद्ध वाङ्मय को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

यथा-संकर संस्कृत, शुद्ध संस्कृत तथा आधुनिक संस्कृत।

संकर संस्कृत में विरचित ग्रन्थ –

बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के साथ जब मागधी से काम न चल सका तब मागधी के स्वरूप परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव हुई। इसका रूप धीरे-धीरे बौद्ध संकर
संस्कृत ने ले लिया इसे विद्वान मिश्र संस्कृत तथा हाइब्रिड संस्कृत के नाम से भी जानते हैं। इस संकर अथवा मिश्र संस्कृत के प्रमुख ग्रन्थों का नामोलेख करना यहाँ उचित है -

(1) सर्वसिद्धव त्रिपिटक के उपलब्ध अंश और विनयपिटक खण्डित सामग्री -

1. मूल सर्वसिद्धव विनय (मिलगन भूमिप्रक्रिया, कश्मीर से प्रकाशित)
2. मूल सर्वसिद्धव प्रातिमोक्ष सूत्र
3. कर्मवाचन
4. अ. सर्वसिद्धव, मिश्रप्रातिमोक्षविनय विभाग
   ब. कर्मविभाग
   ग. कर्मविभागोपदेश
5. सूत्रपिटक की खण्डित सामग्री - 'महापरिनिर्वाण सूत्र'
6. महावदन सूत्र
7. दशोत्तर सूत्र

(2) महासम्प्रदाय त्रिपिटक के उपलब्ध ग्रन्थ

प्रतिमोक्ष सूत्र

महावर्तु

(3) अन्य हीनयानी ग्रन्थ
अवदान शतक

दिव्यावदान

आधुनिक संस्कृत में विरचित ग्रन्थ :- आज भी विद्वान तथागत के जीवन एवं उपदेशों को आधार बनाकर काव्यमय रचना कर रहे हैं। इन रचनाओं का प्रणयन से जहाँ आधुनिक संस्कृत साहित्य में अभिवृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों एवं मन्त्रों को विद्वानों के सामने उजागर करना भी उद्देश्य रहा। अभी तक इस क्षेत्र में कुछ रचना प्रकाश में आयी हैं जिनका उल्लेख इस प्रकार है:-

9. आचार्य सत्यब्रत शास्त्री विरचित बोधिसत्त्वचरितम्

2. पण्डित ओगोटि परिक्षित शर्मा विरचित यशोधरा महाकाव्यम्

3. आचार्य शान्तिभिदु शास्त्री प्रणीत बुज्जविजयकाव्यम्

4. आचार्य शान्तिभिदु शास्त्री प्रणीत अशोकाभ्युदयमहाकाव्यम्

बोधिचर्यायों द्वारा रचित शूद्ध संस्कृत के ग्रन्थ:-

9 आचार्य असंग विरचित अभियन्तरमुख्यं

(विश्वभारती शान्तिनिकेतन से प्रकाशित)
2. आचार्य असंग विरचित महायानसूत्रालंकार

3. आचार्य मैत्रेयनाथ विरचित आलोकटिका सहित अभिसमयालंकार

(गायकवाड़ ओरियनल सीरीज़ बड़ीदा से प्रकाशित)

4. आचार्य नागार्जुन प्रणीत माध्यमिककारिका

(काशीप्रसाद जायसवाल इнстीट्यूट पटना से प्रकाशित)

5. आचार्य नागार्जुन विरचित विग्रहव्यावर्तनी

(सम्पादक काशीप्रसाद जायसवाल एवं राहुल संक्षेपायन काशीप्रसाद जायसवाल
इнстीट्यूट पटना से प्रकाशित)

2. ग्रन्थकार –

दिव्यावदन एक संकलित अवदानों का संग्रह है। संकलन के भिन्न-भिन्न स्रोत हैं। अतः इसलिए इसे किसी एक ग्रन्थकार की रचना नहीं कहा जा सकता। अन्तिम अवदान पर पहुँचते ही दिव्यावदन की पुरापीरांणिक शैली में परिवर्तन देखा जा सकता है और उसके स्थान पर शुद्ध एवं विद्यमान पाणिनीय संस्कृत शैली के दर्शन होते हैं।

इससे यह भी अनुमान लगाया जाता है कि यह अवदान आर्यशूर द्वारा विरचित हो सकता है। इससे सम्पूर्ण ग्रन्थ आर्यशूर द्वारा विरचित होने की सम्भावना को बल मिलता है। अधिक सम्भावना तो यही है कि भिन्न-भिन्न संकलनों के भिन्न-भिन्न संकलनकर्ताओं

21
3. दिव्यावदान के स्रोतः:

दिव्यावदान का संकलन भिन्न-भिन्न स्रोतों से हुआ है। यदि ठीक ही है कि इसके कुछ अंश मूल सर्वसिताविद्याओं के विनय से उद्धृत किये गये हैं फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये अवदान केवल विनय से ही अंश हैं। इसकी कई कथाएं विनय की हैं तो कई सूत्र की अंग हैं। ‘नगरार्कश्चिरकावदान, मेण्डकगृहपतिविरूपितिपरिचयेव, मेण्डकावदान, सुधनकुमारावदान, तोषिकामहावदान का अंश गिलगिट की पाण्डुलिपियों में प्राप्त होता है। ‘मान्यावदान’ अंशतः विनयवस्तु से तथा अंशतः मथमागम से निष्पन्न है। ‘प्रातिहार्षसूत्रम्’ और ‘दानाधिकारमहायान सूत्र, महायानसूत्र’ महायान पंथ के प्राचीन सूत्रों के अवशेष हैं। इन दोनों के शीर्षक में सूत्र शब्द भी प्राप्त होता है। ‘पांशुप्रदानावदान’ में वर्णित उपसूत्र की कथा का संचयन कुमारलाल की ‘कल्पनामण्डितिका’ से हुआ है और ‘भैरक्रमणकावदान’ इस अन्तिम अवदान को आर्यशूर की ‘जातकमाला’ से लिया गया है।
4. दिव्यादान का काल निर्णय –

‘दिव्यादान’ की सामग्री बहुत कुछ मूल सर्वस्तवादियों के बिनय वस्तु और कुमारलात की ‘कल्यणमण्डलिका’ से प्राप्त हुई है। गिरगिट पाण्डुलिपियों के बिनय वस्तु में ‘दिव्यादान’ के अनेक अवदान पूर्णत: या अंशतः प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ ‘मान प्रातादान’ अंशत: ‘विनयवस्तु’ से तथा अंशत: ‘मध्यमागम’ से लिया गया है, सुधनकुमारदान ‘स्तूतिब्रह्मणादान’ आदि बिनय वस्तु से शब्दश: उद्देश्त किये गये हैं।

इस प्रकार जब ‘दिव्यादान’ का संकलन विविध स्रोतों से किया गया है, तब यह निश्चित है कि इस ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न अंशों की रचना भी भिन्न-भिन्न समय में हुई है।

डॉ॰ एम. विन्दरनिटज की यह मान्यता है कि इसके कई अंश निश्चित रूप से ख़िस्तीतर तृतीय शताब्दी के पूर्व लिखे गये हैं। किन्तु सम्पूर्ण संग्रह चौथी शताब्दी से बहुत पूर्व का नहीं हो सकता है। अवदान साहित्य में प्राचीनतम ग्रन्थ सम्भवतः अवदान शतक है, जिसका अनुवाद चौथी भाषा में भी हुआ है। इनकी कथाएं हीनयान से सम्बद्ध हैं और कुछ महायान से। कथाओं का मुख्य उद्देश्य है कर्म और उसके फल की व्याख्या करना। इन कथाओं का विभाजन विविध रूप में किया गया है - अतीत, अनात और प्रत्युपग्रह

‘दिव्यादान’ का महत्व भी अवदान-शतक से कम नहीं है। भाषा शैली और विषय की असम्भवता इस ग्रन्थ रूप को उत्तरार्थित सिद्ध करती है। वस्तुतः इसका
सम्बन्ध मूलसवस्तिवादियों के विनय-पिप्पल से रहा है। इस ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न अंशों की रचना भिन्न-भिन्न समय में हुई है। डॉ० एम० विन्दरनिठ्ज के मतानुसार इसके कई अंशिक निश्चित रूप से लीलय श्लोकी के पूर्व लिखे गये हैं, परन्तु सम्पूर्ण संग्रह बीती श्लोकी से अधिक प्राचीन नहीं हो सकता है। क्योंकि अशोक के उत्तराधिकारी ही नहीं शृंगवंश के पुष्पिन्त्र का उलेख भी इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के संकलनकर्ता कुमारलाल ने ‘कल्पनामण्डलितिका’ की भी कुछ सामग्री का चयन किया है। अत: इससे यह समीचीन प्रतीत होता है कि कलिष के काफी बाद में उसने कल्पनामण्डलितिका के लेखक कुमारलाल, के बाद पर्याप्त काल का व्यवधान हो। शार्लकार्ण्यवादन का अनुवाद चीनी भाषा में दिचु. जा. ख। के द्वारा 365 ई. में प्राप्त हुआ है, जिसका चीनी नाम “शी. ताउ. कीन. किन” था। उपर्युक्त इन विवरणों से यह प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ का प्रस्तुत रूप में संकलन ईसा की 200 और 350 ई. पूर्व में हुआ है।

दिव्यभावदान के अवधारों का सारांश -

1. कोटिकर्णवादनम्

कोटिकर्णवादन आलोच्य ग्रन्थ का प्रथम अवदान है। इसमें भगवान बुध के श्रावस्ती में अनाथपिण्डद के विहार में चारिका एवं गृहपति बलसेन का ‘वासव’ नामक गाँव में निवास करने का उलेख है।

1. ए हिस्ट्री आफ इपड़। लिटी 0 भाग।। डॉ० एम० विन्दरनिठ्ज।
2. सौ बुध्यो लिटी 0 आफ नेपाल - राजेन्द्रलाल मित्र।
बलसेन सन्तान विवेक होने के कारण सप्तलीक पूजा आदि करता था। वह इस तथ्य से भी भलीभाषी अवगत था कि देवोपासना से कदापि सन्तानोपतित सम्भव नहीं है, अपितु सन्तानोपतित के तीन कारणों में ही उसका विश्वास था।

क - माता पिता के संबंध से।
ख - माता के समय पर ऋतुमति होने से।
ग - और गनधर्म उपस्थित होने से।

कालान्तर में बलसेन गृहपति को पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका इक्कीस दिनोपरांत नामकरण किया गया। श्रवण नवम्बर में जन्म और कानों में रतनजितित कर्णभूषण धारण किया होने के कारण बालक का नाम "श्रवण कोटिकर्ण" रखा गया।

श्रवण कोटिकर्ण के अनन्तर बलसेन गृहपति के घर में दो और पुत्रों ने जन्म लिया। जिनके नाम क्रमशः 'दासक' और 'पालक' थे।

तत्पचातु उल्लेख है कि बड़ा होने पर वह श्रवण कोटिकर्ण आठ प्रकार की परीक्षाओं का उच्चकोटि का प्रचारक हो गया। उसने अपने दोनों भाइयों (दासक और पालक) को साथ लेकर धनार्जन की कामना से महासमुद्र की ओर प्रस्थान किया। उसका यह प्रस्थान मध्यमार्ग का पालन करते हुये गर्दब्बनान के द्वारा किया गया। यहाँ वे तीनों रतनदीप पर पहुँच कर यान को रलनों से आपूरित कर जम्बूदीप पर पहुँच जाते हैं।

आगे उल्लेख है कि जब श्रवण कोटिकर्ण अपने माता-पिता के पास जाने के लिये नींद से जागता है तो वह अपने आप को अकेला पाता है। उसका जो गर्दब्बनान
था वह भी दिश्यानित हो जाता है। अतः वह यात्रा से यात्रुक हो कुरग्न से ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहाँ पर बारह वर्षों से वर्षा नहीं हुई थी। उस स्थान का नाम प्रेतनगर था। श्रवण कोटिकर्ण वहाँ पानी की याचना करता है परन्तु पानी नहीं मिलता है। तब वह कहता है- कि हम अविश्वासी जम्मुक्तीप के निवासी है, क्या हमें श्रद्धा नहीं रखने? हम आपको प्रत्यक्ष देखने वाले हैं, हम श्रद्धा के पात्र क्यों नहीं हैं। प्रेतनगर के निवासी कहते हैं -

“कि हम क्रोध ईश्वर आदि करने वाले हैं। तुमने यहाँ पर पूज्य समय में प्रवेश किया है इसलिये कुशलतापूर्वक निकल जाइए।”

वह वहाँ से चल देता है जैसे ही सूर्यास्त होता है वैसे ही वहाँ पर चार अपसराओं से युक्त एक विमान देखता है। उसमें विचित्र आभूषणों से युक्त एक पुरुष भी विद्यमान था, जिसने यात्रा से यात्रुक श्रवण कोटिकर्ण को पानी पिलाया और भोजन कराया। वह पुरुष वास्तव गाँव का मछुआरा था।

आलोच्य ग्रंथ के आधार पर बुरे कर्म का फल बुरा होता था, और पाप आदि तुलकों से मुक्त के लिए दक्षिणा तथा महाकालयान को पिण्डदान दिया जाता था। महाकालयान स्वभाव से विज्ञ,भिक्षुभाव और साधुभाव से युक्त थे। आगे वर्णन हैः कि मृत्युपरान्त प्रेतयोगी में श्रद्धा नहीं की जाती थी। उस समय लोगों की अवधारणा या अवधारणा निरन्तर आभूषणों में श्रद्धा थी। इस अवधारणे के नायक श्रवण कोटिकर्ण ने अपने कहा है कि- यह सम्पूर्ण संसार श्रद्धा में श्रद्धा रखता है परन्तु मे किसी प्रकार की श्रद्धा नहीं
रखता हूँ। अतः वह माता-पिता के पास जाकर शिक्षाप्रदों को ग्रहण करता है तथा चारों वेदों का अध्ययन कर आगामी फल का साक्षात्कार करता है। सदैव सत्य में श्रद्धा रखने वाला होता है। आगे उल्लेख है कि वह अपने माता-पिता की मृत्युपरान्त अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को निर्धारित मनुष्यों में बोट देता है। वह तीन महीनों तक कार्ययोग्य वस्त्रों को ६ गारण करता है और अन्त में उत्तर देता है। उस समय कर गृहण करना अनुचित माना जाता था। उल्लेख है कि किसी नाम के राजा की मृत्यु हो जाती है। तत्पश्चात उसका पुत्र “सुजात” सिंहासनारूढ होता है। तब उसने दैवीय शक्ति से कर गृहण करने वालों को नष्ट कर दिया। अवदान के अन्त में भगवान का भिषुओं के प्रति अभिकथन है कि जो मेरे शासन में प्रभावित होकर सभी क्लेशों का क्षय करता हुआ अर्हत्व को प्राप्त होता है।

2. पूर्णविदानम्

पूर्णविदान आलोच्य ग्रन्थ का द्वितीय अवदान है। इसमें जहाँ आरम्भ में ही भगवान बुध के अनाधिपंडक के विहार में चारिका करने का उल्लेख है। वहीं सूर्यरक्षक नगर में धनादेव ‘ब्रह्म’ नामक गृहपति के निवास करने का भी उल्लेख है। उस गृहपति के भविष्या, भवनरूप तथा भवनन्दी तीन पुत्र थे। ब्रह्म गृहपति के बुध हो जाने पर उसकी पत्नी और पुत्रों के द्वारा उसका तिरस्कार किया गया। बुध के रोगाकूल होने पर प्रेमदारिका ने उसकी सेवा की जिससे वह स्वस्थ हो गया। तदनत्तर दृष्टि को प्रत्युपकार
में वह उससे वर्दन मांगने के लिए कहता है। तब इस पर उसका अभिव्यक्ति है कि “मेरे साथ तुम्हारा समागम हो।”। इस प्रकार वह गर्भिणी हो जाती है और पुत्र को जन्म देती है। उसका नाम “पूर्ण” रखा जाता है। पूर्ण के नाम पर ही इस अवधान का नाम भी पूर्णवन्दन हुआ।

तत्पश्चात् “भव” गृहपति अपने पुत्रों का विवाह कर देता है किन्तु पूर्ण प्रप्रजित होना चाहता है। ‘भव’ पुत्रों को अपनी-अपनी फलियों के साथ संलिप देखकर उनको उनसे अलग रहने की योजना बनाता है। वह उसे व्यापार करने के लिए प्रेरित करता है। सभी पुत्र अपने पिता को एक -एक लाख स्वर्ण मुद्राएं लाकर देते हैं, पूर्ण ने भी धर्मनुसार उसे एक लाख मुद्राएं लाकर दी। ‘भव’ अपने पुत्रों को संगठित रहने को परामर्श देते हुए कहता है- “जो लोग अवनति करते हैं वे उन्नति भी करते हैं। जिनका संयोग होता है उनका वियोग भी अवश्यमभावी है। जो जन्म गृहण करते हैं उनकी मृत्यु भी निश्चित है।

आगे वर्णन है कि भव गृहपति की मृत्यु हो जाती है और उसके शोक मन्म पुत्र उसे श्रमशान घाट ले जाते हैं। तदन्तर पूर्ण के अतिरिक्त सभी भाई विदेश में व्यापार करने चले जाते हैं। पूर्ण घर पर ही निवास करते हुए धनार्जन करता है और अपने सभी भाइयों के परिवार की देख-रेख भी करता है वापस आने पर भविला अपनी पत्नी से पूछता है कि - ‘क्या पूर्ण ने तुम्हारा अच्छे दंग से पालन किया?’ वह कहती है कि जैसा भाई और पुत्रों का किया वैसा मेरा भी। दूसरों के द्वारा पूछे जाने पर कहती है
कि उनका बैसा ही होता है जैसा कि दासी के पृथ्वी के कुल में ऐश्वर्य का महत्व होता है। कालान्तर में ‘भव’ की मृत्युपरान्त सभी अलग-अलग रहने लगते हैं।

आगे वर्णन है कि सूर्यादिकी राजा बीमार हो गया है और वैष्णो के परामर्श पर गोशीर चन्दन मेंगवाया। तब वह राजा स्वस्थ हो गया।

आगे इसी अवधान के अन्तर्गत पाँच सी वैष्णो के द्वारा व्यवहार करने का वर्णन है। महासमुद्र के पार वे वैष्ण ‘बुद्ध’ का नाम सुनते हैं तथा उन्हें सार्थवाह से पता चलता है कि वे शाख्य वंश में उत्पन्न शाख्य पुत्र ‘गीतामुद्ध’ हैं। पूर्ण भी भगवान बुद्ध में श्रद्धा रखता था। वह कामवासना से भी दूर था। धन अर्जित करने की इच्छा भी अधिक नहीं थी। बुद्ध के विश्वास में निश्चित हो जाने पर पूर्ण सार्थवाह के साथ शास्त्रियों में पहुँचे जहाँ अनाथ पिण्डक की सहयोगी से उन्हें भगवान तथ्याग के दर्शन किये और प्रवृत्तित होकर ब्रह्मचर्य का पालन किया। तदन्तर श्रेष्ठ चन्दन वन में सी व्यक्तियों के द्वारा पाँच कुल्हाड़ियों को हट जाते हुए यज्ञ शंकर का उन पर कृपित होने का वर्णन है। कोई के द्वारा भय से भयभीत हुए व्यापारी शिव, वरुण, कुवेर की आराधना करते हैं। प्रस्तुत अवधान के आधार पर वे कल्याण वह भी मनुष्य के कर्म नष्ठ नहीं होते हैं। समय पर यदि सामग्री प्राप्त होगा तो शरीर धारियों को निश्चित ही उसका फल प्राप्त होता है।

प्रस्तुत अवधान में भिन्न भगवान बुद्ध से पूर्ण के बारे में पूछते हैं कि किन कर्मों के कारण पूर्ण धनवान और महाभोगें वाला बना? प्रत्युत्सर्प भगवान बुद्ध का कथन
है कि पूर्ण के द्वारा पूर्वजन्म में भिषु के द्वारा किया कर्म तथा आदर आदि भाव भिषुओं
को दिया गया था। इसलिए यह ऐसे कुल में उत्पन्न हुआ था। अवदान के अन्त में
भगवान बुद्ध का भिषुओं को उपदेश देने का उल्लेख है और भिषु उनके उपदेशों का
अभिनन्दन करते हैं।

3. मैत्रेयावदानम्

मैत्रेयावदान के आरम्भ में श्रावस्ती जाने के मार्ग पर एक नाव के पुल निर्माण
की चर्चा है। आगे प्रणाद नामक राजा का वर्णन है। पुनश्वरीन वह राजा पुनश्वरी ने लिए
चित्रागमन रहता था। वह सोचता था कि प्रभूत धन होने पर भी पुत्र के बिना मेरा
राजवंश नष्ट हो जाएगा। तदन्तर चित्रागमन राजा से इन्द्र ने चित्रा का कारण पूछा तो
राजा ने पुनश्वरीनात्ता को ही चिन्ता का कारण बताया। इन्द्र की कृपा से कुछ दिनों बाद
राजा की बड़ी रानी गर्भवती हो गयी उसे एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम महाप्रणाद
रखा गया। वह सर्वगुण सम्पन्न था। कालान्तर में प्रणाद की मृत्युपरान्त वह राजा बना।
आरम्भ में महाप्रणाद ने कर्मपूर्वक राज्य किया, किन्तु कालान्तर में वह अधर्मी हो गया।
देवनाथ शक्ति ने महाप्रणाद को अधर्म पूर्वक राज्य करने पर मना किया और परामर्श
दिया। तब महाप्रणाद ने एक प्रतिक स्थापित करने को इन्द्र से कहा। इन्द्र ने विश्वकर्मा
को आज्ञा दी और एक देव स्वर्ण भवन निर्मित कराया। राजा महाप्रणाद ने उसे
dानशाला के लिए प्रयुक्त किया। आगे उल्लेख है कि महाप्रणाद के मामा अशोक को
“यूप” के सेवक के रूप में लगाया। आगे उल्लेख है कि कृषकों से राजा कर ग्रहण करता था। एक बार महाधामाद के राज्य में कृषकगण ‘यूप’ के दर्शन करने में तल्लीन रहने लगे जिससे वे अपना कृषि कार्य नहीं कर पाते थे। अतः कर अल्पमात्रा में ही संग्रहीत हो पाता था। इसलिए राजा ने यूप को नदी में बहाने का आदेश दिया।

मंत्रियों ‘यूप’ और ‘बच्चों’ की अनिवार्यता को देखकर वन में आश्रय लेता है और वह ज्ञानी हो जाता है। आगे मध्य देश में वासव नाम के राजा का उल्लेख है। उसका राज्य धनधाम से आयुर्वित समय से सभी वृक्ष आदि पुष्पित एवं फलित होते थे। उसका रत्नशिख्री नाम का पुनः था। वह वृद्ध, मृत और रूप व्यक्ति को देखकर उद्विग्न हो गया और वन की ओर प्रस्थान कर गया। कालान्तर में रत्नशिख्री ज्ञानी हो गया। वासव राजा से उत्तरार्थ का राज धनसम्पत्तू प्रतिस्पर्धा रखता है और राजा वासव को नष्ट करने के लिए मंत्रियों से मन्न्या करता है। मंत्रियों के परामर्श से सेना तैयार करके युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। धनसम्पत्त युद्ध के लिए अपनी चाँदुरंगी सेना को लेकर उत्तर किनारे पर पहुँच जाता है। रत्नशिख्री भी ज्ञान प्राप्ति के बाद रात्रि में गंगा नदी के किनारे पर जाता है। जिसके दर्शनार्थ इन्द्र, बरुण आदि देवता आते हैं। जब मंत्रियों ने, राजा धनसम्पत से इस समाचार को निवेदित किया तो वह आश्चर्य चकित हो गया और कहने लगा कि जिसके दर्शन के लिए देवता भी आते हैं, तो मैं उसका अनुरोध कैसे करेंगा? तत्पश्चात आगे उल्लेख है कि उन दोनों राजा के मित्रता हो जाती है। राजा रत्नशिख्री को अपने यहाँ भिक्षु संघ सहित भोजनार्थ आमंत्रित करता है और भोजन
कराने के पश्चात् वह रत्नशिखी से चक्रवर्ती राजा होने की प्रार्थना करता है। राजा की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए उसने उसे चक्रवर्ती राज्य पर आसीन कर दिया। इसके बाद राजा ने रत्नशिखी से पुनः संसार पर शासन करने की अभियाचना की जिसको रत्नशिखी ने स्वीकार कर लिया।

4. ब्राह्मणदार्शिकावदानम् –

प्रस्तुत अवदान में बुद्ध के व्यासविचारका नामक स्थान पर पहुँचने का वर्णन है। वहाँ पर भगवान का अपरान्ह पूर्व पात्र और चीवर लेकर पिण्डदान करने का उल्लेख है। अगे उल्लेख है कि कपिलवस्तु के ब्राह्मण की पुजी ‘व्यासविचारा’ नामक स्थान में निवास करती थी। उसी समय उसने वातावरण से एवं अस्सी व्यंजनों से युक्त सूर्य की आभा के समान भगवान को देखा। तब उसे भाषा हुआ कि भगवान अवश्य ही यहाँ भिक्षार्थं भ्रमण कर रहे है। में इन्हें सत्युओं की भिक्षा हूंगी जिन्हें वे अवश्य ही ग्रहण करेंगे। तदनंतर भगवान ने उसके चित्त की बात जानकर उसके सहुओं की भिक्षा गृहण की।

5. व्यासविचारावदानम् –

प्रस्तुत अवदान में भगवान बुद्ध का हस्तिनापुर में आगमन का वर्णन है। भगवान के आगमन पर एक ब्राह्मण द्वारा उनके दर्शन करने का उल्लेख है। तदनंतर
उस भाषण द्वारा भगवान की गाथाओं के माध्यम से स्तुति की गयी है। आगे वैभव सम्पन्न वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त का उल्लेख है, जो कवि प्रेमी भी था। उस राजा के राज्य में एक अन्य भाषण निवास करता था, जो कवि था। वह भाषण दूसरे भाषण को सुझाव देता कि अब शीतकाल का आरंभ है हमें राजा के पास जाकर शीत से बचने के लिये गर्म वस्त्र प्राप्त करने चाहिये। उस समय राजा हासिलकट्ट था। अफर था।

भाषणों में से एक भाषण सोचता है कि मैं हाथी की स्तुति करूँ तो राजा की। पुन: वह हाथी की स्तुति करता है। राजा ने भी उस हाथी की अनेक गाथाओं के माध्यम से स्तुति की और पाँच गाँवों में उसकी प्रतिष्ठा पिट दिया। अन्त में भगवान के उपदेशों से सन्तुष्ट हुए भिषुओं ने भगवान का अभिन्दन किया।

6. इद्वनामभाषणावदानम्

प्रस्तुत अवदान में भगवान के श्रुताम नामक स्थान पर पहुँचने का उल्लेख है। वहाँ पर इद्व नामक भाषण ने भगवान को उपदेश देते हुए देखा, तब उस भाषण ने माना कि भगवान कीतम मेरे से इसी अधिक सून्दर तो है किन्तु महान नहीं। इसलिये भाषण ऊँचे स्थान पर चला गया। तब भगवान ने उसे बुलाया और कहा कि यदि तुम तथ्यात्मक के शरीर प्रमाण को देखना चाहते हो तो अपने पर में अभिन्कुण्ड के नीचे रखो हुई यष्टि से माप सकते हो। भाषण को भगवान की सर्वज्ञता के विषय में पता चलता है और वह उनका शरणागत हो जाता है। तब उस यष्टि को भगवान
राजा प्रसन्नजित द्वारा भगवान के उपदेशों को सुनने वाले, दर्शन के लिये उसमें सबसे सम्पूर्ण सम्बुद्ध कास्यप के शरीर संघात का उल्लेख करते है। राजा अन्तः पुर के सभी कुमार मन्त्री और सैनिक, आदि के साथ उनके शरीर संघात को देखने के लिये जाते है। कास्यप का शरीर संघात दृष्टि और महज हो जाता है तब उन्हें अति दुःख होता है और वे सोचते है कि हमारा यहाँ आना ब्यर्थ हुआ।

7. नगरावलिहंकांवदाम्

प्रसन्न अवदान के आरम्भ में भगवान गौतम बुद्ध का कौशल देश में शादी के अनाथपिण्ड के बिहार में वारिका का उल्लेख है। वहाँ पर अनाथपिण्ड गृहपति ने उनका अभिनन्दन किया और भिष्म संघ के साथ भोजनार्थ उन्हें आमन्त्रित किया। भगवान ने मौन के रूप में उसके आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया उसे ढारपालों ने सलाह दी कि जब तक गौतमबुद्ध भिष्म संघ भोज्य न कर लें तब तक किसी अन्य धर्माचार्य (तीर्थकर) को प्रवेश नहीं करना चाहिए। जब भगवान गृहपति अनाथ पिण्डक के घर भोजन कर रहे थे तभी महाकाश्यप भगवान के दर्शन के लिए अनाथपिण्डक गृहपति के घर आते हैं किन्तु उन्हें ढारपालों ने प्रवेश नहीं करने दिया।

तदनत्तर महाकाश्यप के दूसरे नगर में जाने पर कुष्ठ रोग से पीड़ित भिष्मुणि मिली जिसके द्वारा पिण्डपात ग्रहण करने का उल्लेख है। भिष्मुणि उन्हें सन्नुभ देना
अन्तर्ध्यान हो गयी।

आगे उलझ है कि देवाथिकता इन्द्र ने भगवान से उस भिष्मणी के विषय में जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। तब भगवान ने प्रत्युत्तर स्वरूप बताया कि वह भिष्मणी जहाँ भी है, सन्तुष्ट है। यहीं नहीं देवतागण भी उसकी समृद्धि से प्रमोदवित्त हैं। सामन्तकों द्वारा वह सूचना सम्पूर्ण नगर में प्रसारित कर दी गयी, इस पर कीशल नरेश प्रसन्नजित ने भगवान के समीप जाकर उन्हें बन्दना करके अपने यहाँ सरंज सामन्नित किया। भोजन से पूर्व हुए भगवान ने राजा के नाम से वक्षणा का आदेश दिया, जिसे सुनकर आयुमान आनन्द ने चक्कित होते हुए जिज्ञासा भरे स्वर में कहा कि अनेक शिष्यों ने राजा के यहाँ भोजन किया है किन्तु आपके द्वारा उसी के नाम से वक्षणा का आदेश दिया गया- ऐसा क्यों?

प्रत्युत्तर स्वरूप भगवान ने बताया कि राजा ने उड़द की दल की बनी हुई टिकियों का सेवन कराया है इसलिए टिकियों के आधार पर वक्षणा का आदेश राजा के नाम दिया गया।

आगे ‘कर्पटक’ गृहपति के यहाँ पुनः जन्म का उलझ है, जो धन हारक था। धन के क्षीण होने पर वह गृहपति धनार्जन के लिए विदेश को चला गया। लौटने पर पुनः धन के क्षीण होने पर वह विपन्न हो गया। तब माता की प्रेरणा से पुनः खेती करने लगा।

अन्त में उलझ है कि अन्तर्ध्यानस्थ हुई वह भिष्मणी भगवान को आचमन कराने पर सम्पूर्ण सन्तुष्ट हो गयी।
8. सुप्रियावदानम्

प्रस्तुत अवसर में भगवान बुद्ध द्वारा श्रावस्ती के जेतवन में चारिका करने का वर्णन है। जहाँ पर सभी वर्गों के लोगों ने भगवान सहित आनन्द का आदर सक्कर किया। वहाँ एक वर्ष के प्रवास के दौरान भगवान को सभी प्रकार की सुख सुविधाएं उपलब्ध कराई गयी, लोगों ने उनकी पूजा-अर्चना की। तदनुपरांत भगवान ने लोगों को उपदेश दिये।

आगे उल्लेख है कि भगवान बुद्ध के द्वारा मगध राज्य के जनपदों की सात दिनों तक चारिका की गयी। चारिका करते समय भगवान बुद्ध और भिक्षु संघ को राजगृह के विशालकाय बन में हजारों चोरों ने घेर लिया। सस्त्र भगवान को छोड़कर चोरों ने अन्य व्यापारियों को लूटने की इच्छा की। इसे जानकार भगवान ने चोरों को सोना आदि देकर उन व्यापारियों को मुक्त कराया।

इससे भगवान चोरों को इच्छित धन देने के अन्तर राजगृह छोड़ दिया। दूसरी ओर चोरों के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि भगवान ने हमें इच्छित धन प्रदान किया, अतः हमें भी उन्हें भिक्षुसंघ के साथ भोजन के लिए आमन्त्रित करना चाहिए। उनके द्वारा आमन्त्रित करने पर भगवान ने सस्त्र भोजन किया। तदनुपरांत भगवान द्वारा धर्मोपदेश सुनकर दे चोर भिक्षु बन कर अनास्वक्त हो गये। इस पर भिक्षुओं को संशय हुआ और ऐसा करने के लिए भगवान बुद्ध से पूछा? प्रत्युत्तर स्वस्थ्य भगवान ने कहा कि - मार्ग में मैंने पूर्व में इन चोरों से व्यापारियों को मुक्त किया था किन्तु इन्हें उस
समय में सत्तुष्ट नहीं कर सका था।

आगे भगवान ने भिष्कुओं को बताया कि बदर दीप के विशालकाय वनों से १०० वर्ष की यात्रा के बाद अर्जित धन से मैंने इन्हें अब सत्तुष्ट किया है जिससे वे अब भिष्कु बन गये हैं। इस जम्बुदीप के बदर दीप में गमन ब्रह्मा तथा इन्द्र देवता के लिए भी अशक्य है।

9. मेण्डकगृहपति विभृतिपरिच्छेद –

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रन्थ का ६वाँ अवदान है। इस अवदान के प्रारंभ में भद्रकर नगर में निवास करने वाले मेण्डक गृहपति के परिवारों का उल्लेख है तथा बुढा भद्रकर नगर में चारिका करते हैं। आगे उल्लेख है कि शाबस्ती में भगवान के महाप्रतिहार्य दिखाने पर तैरिकों के मनोरथ भग्न हो गये और उनमें से कुछ भद्रकर नगर में जाकर निवास करने लगे। भगवान के आगमन का समाचार सुनकर वे तैरिक स्थिर हुए और विचार करने लगे कि पहले हम गीतम द्वारा मध्य देश से निकाले गये। अब निश्चय ही यहाँ से भी हमें निकाल दिया जायेगा। इसका उपाय सोचते हुए वे ‘कुलोपकरणशाला’ में जाकर ‘धर्मलाभ हो, ‘धर्मलाभ हो’ चिंताले हैं और कहते हैं कि हम लोगों ने तुम सबकी सम्पत्ति देखी है, विपत्ति नहीं। श्रमण गीतम कथित करता हुआ इधर आ रहा है। तैरिकों के द्वारा यह सुनकर भगवान उन्हें वहाँ निवास करने
के लिए कहते हैं, किन्तु तैरिकों का कथन है कि वे वहाँ वास नहीं करें। भद्रक कर नगर की स्थिति को देखकर वे तैरिक कुछ सों। तब इन्हें द्वारा देवपुरों को वर्ष पर्व भद्दकर नगर को धन-धार्म्य से परिपूर्ण करने की आज्ञा दी गयी। इस पर तैरिकों ने नगर के लोगों के साथ नगर की दशा का पता लगाने भेजा। उन्होंने लीटकर उन्हें बताया कि जनपद धन धार्म्य से एवं ऋक्ष्य से पूर्ण है।

तदुपरान्त वे सभी लोग बुझ के शरणागत हो गये। इस पर तैरिकों को आपत्ति हुई और उन्होंने भगवान बुझ के दर्शन पर साठ (६०) कार्यान्त्र का दण्ड रख दिया।

तदनन्तर कपिलवस्तु के ब्राह्मण की कन्या का भद्दकर नगर में विवाह का उल्लेख है। जब ब्राह्मण कन्या ने भगवान के विषय में सुना कि वे भद्दकर नगर की चारिका कर रहे हैं तो उन्हें छिपकर रात्रि में भगवान के उपदेशों को प्राप्त किया और भगवान के कथनानुसार उसने मेण्डक गृहपति के समस्त उपदेशों से प्राप्त होने वाले लाभ को कहा। तदुपरान्त वह गृहपति भी ६० कार्यान्त्र दण्ड के स्वरूप देकर भगवान के पास जाकर आर्य सत्यों को ग्रहण करता है। आगे गृहपति का सम्पूर्ण प्रजा के प्रति कथन है कि भगवान के दर्शन श्रेष्ठ हैं तब अपार जनसमुदाय भगवान के दर्शनार्थ उमड़ गया।

अवदान के अन्त में मेण्डक गृहपति के द्वारा भगवान को भिषु संघ के साथ भोजन कराने का उल्लेख है।
10. मेण्डकावदानम्

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रन्थ का १० वां अवदान है। इस अवदान के आरम्भ में भगवान के द्वारा आर्यसत्वों के उपदेश को ग्रहण करने वाले, पुष्प कर्म करने वाले मेण्डक गृहपति, मेण्डक-पत्नी, मेण्डक पुत्र, मेण्डक पुत्री, मेण्डक-पुत्रवधू, मेण्डक दास, मेण्डक दासी का उल्लेख है।

भिषुओं को इनके विषय में संशय होता है कि भगवान इनके प्रति क्यों आकर्षित हैं? प्रत्युत्तरस्वरूप भगवान का कथन है कि भिषुओं को भी उचित कर्म करने चाहिए जिनका फल अवश्य ही प्राप्त होता है। तदुपरान्त भिषुओं ने भी उचित कर्म करने प्रारंभ कर दिये।

आगे वाराणसी के राजा ब्राह्मण का उल्लेख है, जो वैभव सम्पन्न था। उस समय वाराणसी में बारह वर्षों तक बृहस्पति नहीं हुई जिसके फलस्वरूप त्रिविष्ट दुर्मिश्च पड़े, यथा वंशु, श्येतार्थी और शलाकावृति।

आगे उल्लेख है कि वाराणसी में बारह वर्षों तक अनाभ्योग के कारण सम्पूर्ण धन-धान्य नष्ट हो गया। सभी लोग काल-कालित हो गये। तभी वाराणसी के धनाद्य गृहपति ने रिक्त भण्डारों को आपूर्तित कर दिया। उसी समय भगवान का चारिका करते हुए गृहपति के यहां विषेष आगमन होता है। उस समय गृहपति के यहाँ मात्र चार लोगों का ही भोजन तैयार था। गृहपति ने अपनी थाली का भोजन भगवान के लिए
अर्पित कर दिया। ऐसा ही उसकी पत्नी ने भी किया, पुत्र, पुत्रवधु, दास-दासियों ने भी ऐसा ही किया।तदनन्तर उल्लेख है कि भगवान की अनुक्रम्य से ब्रह्मदत्त का राज्य वैभव सम्पन्न हो गया।

अवदान के अन्त में भगवान भिक्षुओं से कहते हैं कि यह जो गृहपति, गृहपति पत्नी, गृहपति पुत्र, पुत्रावधु, दास-दासियों हैं वे सभी पूर्व जन्म में मेरे द्वारा आर्य सत्यों के उपदेश को प्राप्त करने वाले थे। आपे भगवान भिक्षुओं को सुकम्यों के विपक्ष का उपदेश देते हैं और भिक्षु उसका अनुमोदन करते हैं।

11. अश्चीकवर्णविदानम्

प्रस्तुत अवदान में भगवान बुध ने वैशाली में शायक संघ के साथ चारिका करने का उल्लेख है। आगे वर्णन है कि वैशाली के निवासी गायों को मारने वाले वृषभ के मौस का भक्षण करने के उद्देश्य से उसके वध के लिए दीज्यते हैं। तब उनसे भयभीत हुआ वृषभ संकटमोचन भगवान तथागत के समीप जाता है और उनके पैरों में गिरकर जीभ से पैरों को चाटने लगता है। तब भगवान ने उन नगरवासियों को इन्द्र देवता द्वारा प्राप्त तीन हजार कार्योपकार देकर उस वृषभ के प्राणों की रक्षा की। अपने प्राणों की रक्षा पर वह अति प्रसन्न हुआ।

संशययुक्त आनन्द ने इसका कारण पूछा तो प्रत्युत्तरस्वरूप भगवान बुध ने
आनन्द को बताया कि प्राचीनकाल में विपश्ची नाम का बुद्ध संसार में उत्पन्न हुआ। वह बन्धुमुखी नाम की राजधानी में भिक्षुओं के साथ एक वन (अरण्यक वन) में पहुँचा।

तब वह जग सी चोरों के द्वारा लूट लिया गया। उन चोरों का प्रमुख था वही यह गौद्यालक है। उस कर्म के विपक्ष से अभी तक उसको कोई सुगमति प्राप्त नहीं हुई। अपने पुन्य कर्मों से इस वृषभ ने मेरे चित्त को प्रसन्न किया। इसीलिए यह विपश्ची बुद्ध बना क्योंकि कर्मो का फल अवश्यमान होता है।

12. प्रातिहार्यसूत्रम् -

प्रस्तुत प्रातिहार्य सूत्र में भगवान का राजगृह के वेणुवन में विहार करने का उल्लेख है। वहीं राजा-मंत्री द्वारा सत्कार किया गया। भगवान श्रावक संघ और श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ वैसे ही लिप्त हो गये जैसे कमलपत्र जल के साथ। आगे उल्लेख है कि छह प्रमुख तैविक -पूर्णकाशय, मस्करी, गोशाली पुत्र, संजयी वैरट्टी पुत्र, अजित केशकमल, कक्कुट काल्याण और निर्मन्न ज्यातिपुत्र, राजगृह की कृतृहलशाला में एकत्रित हो कहने लगे कि जब से श्रमण गीतम का लोक में उत्पाद हुआ है तब से हम लोगों का लाभ-सत्कार सर्वथा समुचित हो गया है। हम ऋषिमान और ज्ञानी हैं। यदि वह अपने को श्रेष्ठ समझते हैं तो वे हमारे साथ ऋषि प्रातिहार्य दिखाए। इस प्रकार इन तैविकों ने मगध नरेश बिम्बसार के पास जाकर श्रमण गीतम के साथ प्रतिस्पर्धा करने की इच्छा व्यक्त की।
तदन्तर उल्लेख है कि मगधनरेश विम्बसार विशेष्यान से श्रावसी नगरी में श्रमण गौतम के उपदेश सुनने के लिए जाते हैं। भगवान की वन्दना कर एकान्त में बैठने के बाद भगवान ने उन्हें धर्मकथा का उपदेश दिया। सन्तुष्ट हो मगध नरेश वापिस लौट आये।

आगे उल्लेख है कि राजा प्रसेनजित ने अभिक्षु प्रातिहार्य दिखाकर तैर्थिकों की निर्मित्सना करने के लिए कहा। बुध ने कहा- आज से सातवे दिन तथ्यात्मक सभी के समक्ष महाप्रातिहार्य दिखाएंगे। जेतवन में मण्डप बनवाया गया। तैर्थिक एकात्र हुए और सातवे दिन भगवान मण्डप में आये। भगवान के काय से रक्षित प्राप्त होने लगी। उन्होंने समस्त मण्डप को सुवर्ण कार्य से आलंकृत कर दिया। निदान देवता भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा कर उनके दक्षिण की ओर, श्रावसी देवता वाम भाग की ओर बैठ गये। तब भगवान ने महाप्रातिहार्य दिखाया और उन सभी को अपने उपदेश दिये।

13. स्वागतावदानम्

प्रस्तुत अवदान के प्रारम्भ में बुध भगवान का श्रावसी के जेतवन के अनाथपिण्डक के आराम में चारिका का उल्लेख है। यह भी उल्लेख है कि उसी समय शिष्युमार पर्वत पर निवास करने वाले बोध नामक धनवान गृहपति ने अपनी सुन्दर कन्या का विवाह अनाथपिण्डक के पुत्र के साथ कर दिया।

तदन्तर उल्लेख है कि बोध गृहपति की पत्नी ने पुनः गम्भीरण किया तो अनेक
अनर्थ होने लगे। ज्योतिषियों ने गर्भपात का सुझाव दिया किन्तु उनके सुझाव को अमन्य करते हुए गर्भस्थ शिशु के जन्म लेने की प्रतीक्षा की। इसी बीच में गर्भ के बढ़ने पर उत्तरोत्तर अनर्थ होने लगे। अन्ततः उसकी पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया। अनेक अनर्थों को उत्पन्न करने वाले पुत्र का गृहपति ने स्वागत किया। पिता के द्वारा उसे स्वागत नाम से पुकारा गया। इसलिए उसका नाम भी स्वागत रखा गया।

कालान्तर में पुत्र के बड़े होने के साथ-साथ बोध गृहपति का ऐस्वर्य नष्ट हो गया। तभी बीघ और उसकी पत्नी का देहावसान हो जाता है। यहीं नहीं आग लगने से उसकी समूर्ण सम्पत्ति भी नष्ट हो गयी। वह जहाँ-जहाँ भी गया वहाँ-वहाँ पर अनर्थों ने उसका पीछा किया। परिणामतः ‘स्वागत’ को उसके सम्बन्धियों के द्वारा ‘दुरागत’ नाम से सम्बोधित किया गया। अतः उनके द्वारा उसका तिरस्कार भी किया गया।

तदन्तर अनाथिपिण्डक गृहपति भिरुसंघ के साथ भोजनार्थ आमन्त्रित करता है।
भगवान ने भोजनोपरांत स्वागत को बुलाकर उसे भोजन कराकर प्रबोधित कर दिया।
इस पर वह इन्द्रादि देवताओं द्वारा पूजित हो गया। भगवान के द्वारा स्वागत को प्रबोधित करने पर भिरुसंघों को संशय होता है। तदन्तर भगवान भिरुसंघार पर्वत पर जाते हैं।
वहाँ ब्राह्मण गृहपतियों द्वारा उन्हें सादर भोजन कराया जाता है। तब वे ब्राह्मण गृहपति नाम से भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं। भगवान बुद्ध के आदेशानुसार स्वागत उस नाग को वश में कर भगवान के समक्ष प्रस्तुत करता है।
भगवान के आदेश पर नाग उन गृहपतियों को अभयारण दे देता है।
अन्त में भगवान ने भिक्षुओं के संशय को दूर करते हुए कहा कि - 'स्वागत ने भिक्षु जैसे सुकर्म किए इसलिए उसे मेरे द्वारा प्रबलिंगित किया गया।

14. सूकर्तिकावदान -

प्रस्तुत अवदान के आरम्भ में च्वांत धर्म को मानने वाले देवपुत्र का उल्लेख है, जो पृथ्वी पर आकर भ्रमण करता हुआ दुःखी होता है और प्रायश्चित करता है। देवों के राजा इन्द्र ने उसके दुःखी होने का कारण पूछा तो उसने प्रत्युत्तर स्वस्त कहा कि - अब से सातवें दिन वह 'देवपुत्र' राजगृह नगर में 'सूकर्ति' की कुलक्ष्म में जन्म लेगा जो अनेक वर्षों तक उसे मल-मूँत्र जैसी मलिनता में रहना होगा। तब अथोयोनि में उपन्यास होने के भय से भयभीत उस देवपुत्र को, इन्द्र भगवान बुध की शरण में जाने के लिए कहते हैं।

आपे उल्लेख है कि त्रिशारण (बुध-धर्म-संघ) गमन से उसे पुनः देवयोनि प्राप्त हो जाती है। अवदान के अन्त में देवधिपति इन्द्र भगवान से उस देवपुत्र के जन्म स्थान के विषय में जिज्ञासा प्रकट करते हुए पूछते हैं? इस पर भगवान का अभिकथान है कि उसने सभी कामनाओं को समृद्धि प्रदान करने वाले 'कृषिक देवताओं के 'तुषित' नामक लोक में जन्म लिया।
15. चक्रवर्ती व्याकृतावदनम् –

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रन्थ का १५वीं अवदान है। आरम्भ में भगवान बुद्ध द्वारा श्रावस्ती नगरी में अनाधिपिण्डद के आराम में चारिका का उल्लेख है। पुनः उल्लेख है कि केश नख वाले स्तूपों की भिष्मुओं द्वारा पूजा की जाती है। उसी समय भगवान ध्यानस्थ हो जाते हैं। सायंकाल में ध्यान से विराम होने पर उन्होंने उस भिष्मु को केश और नख वाले स्तूप पर साधारण प्रणाम करते हुए देखा। इस पर भगवान ने अनेक भिष्मुओं के सामने उस भिष्मु को हजारों वर्षों तक चक्रवर्ती राज्य भोगने की उद्देश्यण की। इससे असंतुष्ट अन्य भिष्मुओं ने पुनः केश-नख वाले स्तूप पर नैमित्तिक कर्म करना छोड़ दिया। भगवान ने उनके दिन को जानकर उन्हें बुलाया और उपदेश दिया कि अविद्या के कारण सत्त्व दीर्घ काल तक संसार में संसर्ग करते हैं।

अवदान के अन्त में उल्लेख है कि उपालि भगवान से उस भिष्मु के विषय में जिज्ञासा प्रकट करते हैं तब भगवान उपालि से कहते हैं कि उसके पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण वह चक्रवर्ती राजा का भोग भोगेगा।

16. शुक्पोतकावदनम् –

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रन्थ का १६वीं अवदान है। इसके प्रारम्भ में उन दो शुकशालकों का उल्लेख है जिनका अनाधिपिण्डद गृहपति द्वारा संपोषण किया जाता है। आगे भगवान बुद्ध ने इन शुक शालकों को आर्य सत्यों का उपदेश देकर अपनी शारण
में प्रतिष्ठापित किया। उसी समय वे श्रुक शावक विद्वान द्वारा पकड़ लिए गये और विद्वान द्वारा मारने पर वे त्रिशरण का अनुसरण कर परलोक को चले गये। भगवान द्वारा अन्य किसी प्रदेश में मुस्कराने का वर्णन है। इस पर कि भगवान बिना किसी हेतु के नहीं मुस्कराते हैं। आनन्द से इसका कारण पूँछा। तब आनन्द ने कहा कि वे दोनों श्रुक-शावक चकवर्ती राजाओं के शरीर में और देवयोनि में प्रवेश कर गये। क्योंकि दोनों श्रुक-शावक मेरे समक त्रिशरण (बुद्ध-धर्म-संघ) का अनुसरण कर परलोक सिद्धार्थ गये थे।

कलान्तर में भिष्मों के द्वारा श्रुक-शावकों के विषय में पूछे जाने पर भगवान बुद्ध ने प्रत्युत्तर स्वरूप उनसे कहा कि त्रिशरण गमन से दोनों श्रुक-शावक चकवर्ती राजाओं और देवयोनि में उत्पन्न होंगे। इसके अतिरिक्त भगवान ने उनके विषय में यह भी भविष्यवाणी की कि वे बोधि प्राप्त कर प्रत्येक बुद्ध होंगे।

17. मान्यतावदानम्

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रन्थ का ७७वाँ अवदान है। इसके आरम्भ में ‘उपोषय, नामक राजा का उल्लेख है। अगे भगवान आनन्द से कहते हैं कि – हे आनन्द प्राचीन काल में उपोषय नामक राजा हुआ उसके पुत्र उत्पन्न हुआ जो ‘मान्यत’ नाम से विख्यात हुआ। जब मान्यत जनपदों को भ्रमणगर्भ गया तो उसी बीच में उपोषय की मृत्यु हो गयी। मृत्यु होने पर मन्त्रियों द्वारा मान्यत को राज्यभिषेक के लिए आमंत्रण
भिजवाया गया किन्तु वह नहीं लौटा। तदनन्तर दियोजक नामक यश के आमने-चार पर मान्यता आया और उसके द्वारा राज्याधिकार में प्रवृत्त विविध वस्तुओं का एकत्रीकरण करने पर मान्यता का राज्याधिकार किया गया।

आगे उल्लेख है कि मान्यता पूर्व विदेशीय, अपर गोदानीय द्वारा एवं उत्तरकुश द्वैपों पर अधिकार करता हुआ, देवताओं के दर्शनार्थ आगे बढ़ा। आगे जाते हुए उसके स्वर्णमयी पर्वतमालाओं को पार करते हुए चुम्बन नामक पर्वत पर पहुँच गया। यहाँ पर उसने पाँच से ऋषियों को ध्यानमय देखा। आगे चलते हुए मार्ग में उसकी सेना को ऋषियों, नागों, अनेक देवताओं आदि के द्वारा भयभीत किया गया परन्तु वह इन बाह देवताओं को पार करते हुए चतुर्वेदाराज देवताओं और तैनात करोड़ देवताओं की (सुदर्शन) नगरी में पहुँचा। उस नगरी में तैनात करोड़ देवताओं द्वारा अर्थ देकर मान्यता का स्वागत किया।

आगे उल्लेख है कि देव नगरी से वापस लौटने पर पनु: अपने राज्य में आ जाता है और वह सुगन्ध हो जाता है। अनेक लोग उसके दर्शनार्थ आते हैं। उन लोगों को अनास्वक्त एवं गृहस्थ बनने से मुक्त सर्वथा दूर प्रब्रज्ञ ग्रहण करने का उपदेश देता है।

आगे भिक्षुओं ने भगवान से मान्यता के राजा होने का कारण पूछा। इस पर भगवान ने बताया कि प्राचीन काल में विपश्यी नामक सम्प्रदाय संबंध चारीका करते हुए बन्धुमती राजधानी पहुँचे। वहाँ औलकरिक वैश्य ने विपश्यी के पात्र में मुद्री भर मूँग
डाली, वह मूंग चार पात्रों में गिरती है। उनमें से एक पात्र की मूंग पृथ्वी पर गिरा दी जाती है।

आगे भगवान का अभिकथन है कि जो औत्तरिक वेश्य है मेरे ही समय में हुआ। सम्पत्ति संबंध विपश्यी के प्रसन्न चित्त होने पर मुद्री की मूंग पात्र में गिराई, उससे मूंग चार पात्रों में गिरी। उस कर्म के विपक्ष से ही मान्यता चार द्वीपों के राजदेश वर्ष का स्वामी बना है और जो भूमि पर गिर गयी थी उस कर्म के विपक्ष से वह (मान्यता) तैतीय करोड़ देवताओं से श्रेष्ठ बना। उस समय में जो औत्तरिक वेश्य था वह मान्यता राजा हुआ।

18.धर्मरूप्यावदानम्

‘धर्मरूप्यावदान’ आलोचनावत्थ का १८ वां अवदान है। इसमें ५०० वचनों का व्यापार के लिए महामुद्र की यात्रा कर रत्नदीप पर जाने का उल्लेख है। व्यापारियों की समुद्र यात्रा की कठिनाइयों एवं भयावहता का सामना करना पड़ता था। कभी-कभी उन्हें माता-पिता, पुत्र- पत्नी और अन्य सम्बन्धियों का भी परित्याग करना पड़ता था। यहीं नहीं अपने जीवन से भी सर्वथा हाथ धोने पड़ते थे। ऐसी स्थिति में सामृद्ध्य यात्रा एक पराक्रम पूर्ण कार्य था। समुद्र में तिथि और तिथिगत नाम के मगरमच्छ भी पाये जाते थे। यहीं नहीं यह तत्त्व कूर्मों का भी भय होता था। जल में जहाज कभी-कभी बहुत दूर तक चले जाते थे और कभी-कभी जल के भीतर छिपी चट्टानों से टकरा कर
विदीर्ण भी हो जाते थे। बड़े-बड़े तूफानों का जहाँं भय रहता था वहीं डाकुओं द्वारा जहाजों को लूट लेने की घटनाएं भी होती थीं। यदा-कदा ऊँची-ऊँची लहरों से जहाज सूक्ष्म भी जाते थे। इन भयों के उपसनान्तर वणिक अपने इष्ट देव की आराधना करते थे। यही नहीं मरण-भय के उत्पन्न होने पर वे शिव, वरुण, कुबेर, महेन्द्र, उपेन्द्र आदि देवों से परितारणार्थ याचना करते थे।

तदन्तर आगे उल्लेख है कि महाश्रेष्ठी के व्यापार देशान्तरण करने पर जब वह वापिस नहीं लौटता है तब उसकी पत्नी काम संताप से व्यक्त हो अपने वयस्क पुत्र के साथ एक वृद्ध महिला के पर चिरकाल तक रतिक्रीडा करती है। किन्तु इस प्रकार के कुण्डक का ज्ञान ही जाने पर उसका पुत्र विमूढ एवं अचेत हो जाता है। वह उसको घड़े के जल के छीटों से सचेत कर देती है और पुत्र अनुशासन द्वारा पुत्र को उसी पत्नी अर्थम की ओर प्रवृत्त करती है। कालान्तर में वह महाश्रेष्ठी के वापिस लौटने पर अपने पुत्र द्वारा उसका वद कर डालने के लिए भी प्रेरित करती है। आगे उल्लेख है कि काम-संस्कार चित्र होने के कारण ही श्रेष्ठ-पुत्र तीन महापातकों का भी भागी होता है, यथा पितृ-वध, मातृ-वध एवं अर्हत-वध। वह श्रेष्ठी पुत्र भिषु के समीप जाकर प्रव्रज्या गृहण करने की इच्छा व्यक्त करता है। श्रेष्ठ पुत्र द्वारा किये महापातकों का भिषु द्वारा बोध हो जाने पर वह उसे प्रत्रजित नहीं करता। यही नहीं माता-पिता की अनुमति के बिना भी किसी को भी प्रत्रजित नहीं किया जाता था। ऐसे मामलों में प्रव्रज्या- गृहण करने से पहले अपने माता-पिता अथवा अभिभावक की अनुमता ग्रहण
करना आवश्यक था। आगे प्रब्रज्ञा की महत्ता बताते हुये बुद्ध कहते हैं कि प्रब्रज्ञा ग्रहण करने से मनुष्य कुशल -धर्मों का संचय करता है तथा इस जन्म में उपार्जित अकुशल - धर्मों का नाश करता है एवं गुणों की अधिगमि होने पर वह संसरण -चक से सर्वथा विनिर्मुक्त हो जाता है। अवदान के अन्त में भगवान का मिज़हाबों के प्रति अभिव्यक्त है कि वह महापापकी धर्म रुचि ही था जिन कर्मों के विपरे के वह नरक का भागी हुआ।

19. ज्योतिष्कावदानम् -

प्रस्तुत अवदान आलोच्यग्रन्थ का १६वीं अवदान है। इसके आरम्भ में उल्लेख है कि जब भगवान बुद्ध राजगृह में मिसाचरण कर रहे थे, तब सुभद्र नाम का गृहपति अपनी गर्भवती पत्नी को भगवान के पास लाया और उनसे पूछा कि - मेरी गर्भवती पत्नी किसको जन्म देगी? प्रत्युत्तर स्वरूप उन्होंने कहा कि यह पुत्र को जन्म देगी। यह गर्भस्थ कुल का अभ्युदय करने वाला होगा। तब सुभद्र के साथ ही रहने वाला भूरिक भगवान की इस भविष्यवाणी को सुनकर विचार करता है कि दोनों का भिक्षाकुल एक ही है। उसको भी श्रमण गौतम अपने अनुकूल करना चाहते हैं। भूरिक श्रमण गौतम की भविष्यवाणी पर चिन्तन करने पर सोचता है कि मैं गौतमक्षत बालों का अनुमोदन करता हूँ तो सुभद्र की गौतम के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा हो जायगी। इसलिए वह उससे कहता है कि इन बातों में से कुछ सत्य है और कुछ असत्य है।
पत्नी पुत्र को उत्पन्न करेगी, पुत्र कुल का अम्बुदय करेगा- यह सत्य है। किन्तु वह गर्भस्थ शिशु मनद भाव है, जो उत्पन्न होते ही अग्नि से कुल को जला देगा। यह गीतम के शासन में प्रभावित होगा - यह सत्य है। क्योंकि जब इनके पास भोजन और वस्त्र का अभाव होगा तो स्वयं ही प्रभावित होगा। सभी कलशों के उच्चल्हन हो जाने पर अर्थव्य का साकार करेगा यह असत्य है। अपने इस कथन की सम्प्रृति में वह तर्क देता है कि भगवान को सभी कलशों के उच्चल्हन होने से अर्थव्य की प्राप्ति नहीं हुई तो क्यों गर्भस्थ शिशु को अर्थव्य की प्राप्ति होगी। भूरिक के इस कथन से दुखी होता है और प्रारम्भ में सुभद्र गर्भपात करने का असफल प्रयास करता है और वह अन्त में अपनी पत्नी को मार डालता है। उसके शाह का शीतवन के श्मशान में अन्तिम संस्कार कर देता है। यही नहीं निर्देश भूरिक राजग्रह के मार्गों और गलियों में भ्रमण करते हुए बुद्ध की भविष्यवाणी को असत्य बताता है। आगे वर्णन है कि सुभद्र अपनी पत्नी के अन्तिम संस्कार के लिए शीतवन के श्मशान में जा रहा है। तभी भगवान शाबक संघ के साथ शीतवन पहुँचते हैं। तदुपरान्त राजा विम्बसार भी शीतवन में भगवान के पास पहुँच जाते हैं। जब सुभद्र ने पत्नी के शाह की चिंता में आरोपित करके जलाना प्रारम्भ किया तब उसकी कुश्ती के अतिरिक्त समस्त शरीर अग्नि में जल जाता है। कालान्तर में कुशि के फटों पर उससे उत्पन्न कमल पर एक शिशु बैठा पाया गया। तब भगवान बुद्ध के द्वारा सुभद्र को आमंत्रित करने पर भी उसने शिशु को ग्रहण नहीं किया। अन्ततः भगवान द्वारा आमंत्रित किये जाने पर राजा विम्बसार ने उस शिशु को ग्रहण कर
लिया। आग के मध्य में उत्पन्न होने के कारण भगवान के कथनानुसार उसका नाम ज्योतिष्क रखा गया। तभी ज्योतिष्क के मामा को जब इस सकल दृष्टांत का पता चलता है तो उसने कहा कि यदि तुम ज्योतिष्क को नहीं लाते हो तो तुम्हें सभी से अलग कर दिया जाएगा। इस पर सुभद्र व्यक्त हुआ। राजा बिम्बसार के पास जाकर पुत्र की याचना करता है। किंतु बिम्बसार भगवान की अनुमति के बिना ज्योतिष्क कुमार को देने से मना कर देता है। तब सुभद्र भगवान के पास जाकर उनके चरणों को शर्त कर उनसे पुत्र की याचना की। इस पर भगवान ने आनन्द को राजा बिम्बसार के पास भेजकर कुमार दिलवाया। भगवान की भविष्यवाणी गर्भस्थ शिशु के विषय में सत्य प्रमाणित हुई।

भिक्षुओं की संशय हुआ कि कैसे ज्योतिष्क कुमार राजा हुआ? तब भगवान ने भिक्षुओं की संशय को दूर करते हुए कहा - प्राचीन काल में विपश्यी नामक बुद्ध हुए जो जनपदों की यात्रा करते हुए ‘बन्धुमति’ नाम की राजधानी में पहुँचे। वहाँ बन्धुमत नामक राजा राज्य करता था। तभी एक अनड़गण नामक धनाद्वीप गृहस्थि का उल्लेख है। उसी समय राजा बन्धुमत और गृहस्थि में ‘विपश्यी’ को सर्वप्रथम भोजन कराने की प्रतिस्पर्धा होने लगी। अन्त में अनड़गण गृहस्थि विजयी हुआ और विपश्यी ने अनड़गण के यहीं भोजन किया। अन्त में भगवान को भिक्षुओं के प्रति कथन है कि यह जो अनड़गण गृहस्थि ही ज्योतिष्क हुआ था।
20. कनक वर्णावदानस्

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रंथ का 20वीं अवदान है। इसके प्रारंभ में अनात्मिण्ड के आराम में साढ़े तेरह सी भिक्षुओं के साथ भगवान बुद्ध की चारिका का वर्णन है।

इस अवदान के प्रारंभ में उल्लेख है कि कनक वर्ण नामक राजा कनकावती नामक राजधानी में राज्य करता था। उसकी प्रजा धनधार्म से सम्पन्न थी। कालान्तर में भविष्यवाणी से पता चला कि राज्य में 92 वर्षों तक वर्षा नहीं होगी। इस पर राजा दुखी होकर रोने लगा। उसने जम्बुद्वीप से अन्न का संग्रह कर सर्वां एक-एक कोष्ठागार स्थापित कर दिया। उस अन्न से 99 वर्षों तक लोगों का जीवन यापन होता रहा। राजा की एक मानिक खाने बची है। सभी लोग भूख से मरते लगे। तभी भगवान बुद्ध का भिक्षुओं के साथ कनकावती में आगमन हुआ। भगवान बुद्ध की भोजन ग्रहण करने की इच्छा से राजा रोने लगता है। अन्ततः राजा ने अवशिष्ट एक गाल का खाना भगवान के पात्र में डाल कर जैसे ही उन्हें हाथों में धमाया तभी राज्य में विविधि खाद्य वस्त्रों की वर्षा होने लगी। इससे सन्तुष्ट हुआ राजा अति प्रसन्न हुआ और उसके राज्य में दरिद्रता का अंत हो गया।

21 सहस्रदुतावदानम्

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रंथ का 21वीं अवदान है। उल्लेख है कि भगवान बुद्ध राजपुत्र में प्रवेश करते हुए कलन्दक निवाप पहुँचते हैं। वहाँ आनन्द भगवान से पूछते हैं कि क्या कारण है जो महामृदगंगायान भिक्षु-भिक्षुणी उपासक-उपासकी की
चार तत्परिवेशों के साथ विवाह करते हैं। इस पर प्रत्येक समय भवन का अभिकर्ण है जिसके समय कोई भी भिष्म नहीं है। तदनत्तर उल्लेख है जिस प्रत्येक राजमुख में निवास करता था। उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और अपने पुत्र के नामकरण संस्कार के बाद गृहपति व्यापारिक वस्तुओं को लेकर व्यापार के लिए समुद्र तट से जाता है। जहाँ पर उसका निवास हो जाता है। गृहपति के पुत्र का पालन पोषण गृहपति के सम्बन्धियों के सहयोग से किया जाता है। एक बार गृहपति पुत्र प्रभाव समान आय वालों के साथ वेगुश्व गया। द्वारा कोष्ठक द्वारा निर्माण पंचगंग्दो का चक बना हुआ देखकर उसके विषय में दूषा। प्रत्येक समय वह पांच गति (नाक, तिरंगा, प्रेत, देव, मनुष्य) के विषय में बताता है। इस पर वह देवगति प्राप्ति का उपाय उस भिष्म से पूछता है। भिष्म इस पर कई सुझाव देता है उनमें से वह भगवान को भोजन कराने का युक्त व्यवहार करता है, किन्तु धनपात में वह मदद कर खोजने की इच्छा से जाता है। एक गृहपति द्वारा सत्तोषजनक कार्य करने पर भूलकर दी जाय गी। उसकी शर्त को स्वीकार करने पर वह नीतियों को लोक कथाएं सुनाकर डुकुणा कार्य कर लेता है। फिर भी भोजनार्थ पांच सी कार्यान्वयन उसे प्राप्त ही नहीं होते। गृहपति उसे अवशिष्ट राशि प्रदान करने को तेयार हो जाता है। किन्तु वह उस राशि को देय गति की प्राप्ति में धारा मानता है। अन्त में वह बुध के पास जाता है। बुध के कहने पर गृहपति से अवशिष्ट राशि प्राप्त कर पांच सी कार्यान्वयन से भगवान को संबंध भोजन कराता है। भगवान उसे चार आर्य सत्यों का उपदेश देते हैं।
तदन्तर राजगृह में एक पुत्र विहीन श्रेष्ठी के स्वर्गवास का उल्लेख है। श्रेष्ठी के स्थान पर अभिज्ञानार्थ राजगृह के निवासियों ने यह निश्चय किया कि विविध रंगों के बीज कुम्भ में डाले जाएं और जो भी एक रंग के बीज कुम्भ से निकालेगा उसी का अभिज्ञान कर दिया जायेगा। गृहपति पुत्र द्वारा एक रंग के बीजों को कुम्भ से निकाले जाने पर उसका अभिज्ञान कर दिया जाता है। उसी समय वह धन धान्य से सम्पन्न हो गया। अचानक ही भेंटों से समुन्नति को प्राप्त हुआ उस गृहपति पुत्र का नाम सहसोदरागत गृहपति पड़ा। पुनः भगवान को ससंघ गृहपति के द्वारा भोजन कराने का उल्लेख है। इस पर भगवान उसे आर्य सत्यों का उपदेश देते हैं।

आगे भिषु भगवान से सहसोदरागत गृहपति की समोन्नति का कारण पूछते हैं। प्रत्युत्तर स्वरूप कहते हैं कि गृहपति कुछ कार्यकाल दूसरे कर्वटक (गाँव) को गया तभी उसकी पत्नी उसके आदेशानुसार प्रत्येक बुद्ध को अन्नपान से सज्जूँक करती है। तभी गृहपति पुत्र प्रत्येक बुद्ध से कदु वचन बोलता है। वह गृहपति पुत्र ही सहसोदरागत गृहपति है, इस कारण नीकर के रूप में उसे कार्य करना पड़ा।

22. चन्द्रप्रभायोध्विसख्चचर्याविदानम्

प्रत्युत्तर अवदान आलोचनात्मक का २२ वाँ अवदान है। प्रारंभ में ही भगवान बुद्ध का राजगृह में चारिका करते हुये भिषुओं के साथ गृहकूट वर्तमान पर पहुँचने का उल्लेख है। वहाँ भिषु संशय करते हुये भगवान से पूछते हैं कि किस प्रकार से सारिपुत्त्र और मोदगल्यान निर्वाण धातु से लोट कर अपने पिता के मरण को रोक देते हैं? प्रत्युत्तर
स्वरूप भगवान का अभिकथन है कि प्राचीन काल में उत्तरापथ के मार्ग में भगवान नाम की राजधानी थी जिसमें चन्द्रप्रभ नाम का धार्मिक राजा राज्य करता था। राजा चन्द्रप्रभ महादानी था। उसके प्रभुत दान से सकल जनबुद्धीपवासी महापात्र हो गये। राजा चन्द्रप्रभ के दो अग्र अमाल्य महावेंद्र और महीधर थे जो मेधावी, विद्वान और विशिष्ट गुणों से अलंकृत थे। वे दोनों अग्र अमाल्य राज्य के विनाश के स्वप्नों को देखते हैं। राज्य में विनाश सूचक स्वप्न को देखकर सभी अमाल्यगण भयमग्न हो जाते हैं। यहीं नहीं इन दोनों अग्र अमाल्यों ने रौद्रेश्वर नाम के ब्रह्मण द्वारा राजा के सिर की याचना करने का भी स्वप्न देखा। वे दोनों अग्र आमल्य राजा के महादानी होने के कारण अति व्यथित हो जाते हैं और उस याचक के लिये राजा का एक रत्नमय सिर भी बनवाकर रख देते हैं। किन्तु इस कार्य में वे अपने को असफल देखकर अपने ऐसे शरीर का परिवर्तन कर ब्रह्माण्य में उत्पन्न होते हैं। तदनत्तर चर की याचना करने वाले रौद्रेश्वर ब्रह्मण जब चन्द्रप्रभ के दरवार में प्रवेश कर उनसे सिर की याचना करता है। तब राजा मणिरत्नगण्य नामक उद्यान में जाकर अपना सिर ब्रह्मण को अपीत कर देता है। ब्रह्मण सिर लेकर चला जाता है।

अवदान के अन्त में भगवान का भिंत्रु से प्रति कथन है कि उस काल में चन्द्रप्रभ में ही था, रौद्रेश्वर ब्रह्मण देवदत्त था, तथा महावेंद्र और महीधर नामक अग्र अमाल्य सारिपुण्ड और मीदस्लायण थे। भगवान भिंत्रु के संशय को दूर करते हुए कहते हैं कि कुशल कर्मों के विपक्ष से उन्होंने अपने पिता की मृत्यु को रोक दिया था।
23. संघर्षक्षितावदनम्

प्रस्तुत अवदान आलोच्यप्रन्य का २३वीं अवदान है। इसके प्रारंभ में उल्लेख है कि शावसी नगरी में बुधरक्षित नामक धनवान गृहपति निवास करता था। उसकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम संघर्षक्षित रखा गया। जिस दिन संघर्षक्षित का जन्म हुआ, उसी दिन ५०० वैश्यों के घर भी ५०० पुत्र ने जन्म लिया था। बुधरक्षित आयुष्मन शारिषुत्र को अपने वचनों के अनुसार अपने पुत्र संघर्षक्षित की श्रमण बनने के लिए सौंप दिया। तब शारिषुत्र ने संघर्षक्षित को प्रभावित कर चार आर्यसत्यों का उपदेश दिया।

आगे उल्लेख है कि ५०० वैश्य पुत्र समुद्र यात्रा में धर्मोपदेश के श्रवण के लिए संघर्षक्षित को भी अपने साथ ले जाते हैं। महासमुद्र के मध्य में पड़ुंचने पर उन्हें नाग मिलते हैं। उन नागों के द्वारा संघर्षक्षित को माँगने पर वे उसे नहीं देते हैं। वैश्यों की इच्छा के बिना संघर्षक्षित महासमुद्र में कूद जाता है और नागों के साथ नागभवन में चला जाता है। वे संघर्षक्षित से कहते हैं कि हम नाग हैं। वहाँ आर्य सत्यों को प्रतिष्ठापित करते। संघर्षक्षित उनमें से तीन नागों को आर्यसत्यों का उपदेश देकर सकुशल वापस जहाज पर आ जाता है। तब वैश्यों द्वारा उसे समुद्र किनारे लाया जाता है। वहाँ वे सब रात्रि विश्राम करते हैं। रात्रि के अन्तिम पहर में वैश्य संघर्षक्षित को सोता हुआ छोड़कर माल लाने कर चले जाते हैं। तदनत्तर संघर्षक्षित भी जागने पर अपने को अकेला पाकर प्रस्थान करता है और वह शालवनी में बिहार करता हुआ एक पंचपीठ
बेदी को देखता है। वहाँ पर उपस्थित भिषुओं द्वारा भोजनादि से उसका स्वागत किया गया।

आगे उल्लेख है कि संपरकित ५०० ऋषियों से आश्रम में अपने आश्रय की याचना करता है। तब ऋषियों द्वारा उसे आश्रय दे दिया जाता है। वहाँ संपरकित ऋषियों में ब्राह्मण वर्ग को स्वाध्याय करता है। आगे उल्लेख है कि उन ब्राह्मणों ने संपर्कित के साथ सभी क्लेशों से सर्वथा दूर भगवान का साक्षात्कार किया। तदनंतर संपर्कित वहाँ से भी प्रस्थान करता है। वे ही ५०० वैश्य, उसे मिलते हैं जो पूर्व में उसे सोता हुआ छोड़कर चले आये थे, वह उन्हें साथ लेकर भगवान के पास जाता है। भगवान उन्हें प्रर्चित कर धर्मोपदेश देते हैं। वे सभी अर्हत्व को प्राप्त होते हैं।

24. नागकुमारावदानम्

यह अवदान आलोच्य ग्रन्थ का २४वीं अवदान है। इसके प्रारम्भ में ही भिषुओं को संशय उत्पन्न होता है कि नागकुमार को सर्वप्रथम श्रद्धा कैसे प्राप्त हुई? संशय को दूर करने वाले भगवान का भिषुओं के प्रति कथन है कि २०,००० वर्ष की आयु प्राप्त करने वाले काश्यप गोत्र में बुढ़ उत्पन्न हुए। उन्होंने देव पुरुषों को उपदेश दिया। भगवान के उपदेश को सुनकर कुछ भिषुओं ने अप्रमादी होकर श्रमानं, वनं, सुमेहु की तलहटी, मन्दागिनी और पुष्करणी के तत्त्वं, शीतल जल से आपूरित सरोवर, ग्रामों,
लिङ्गों एवं राजधानियों में जाकर ध्यानमग्न हो गये। कालान्तर में पश्चिम गुजरात ने सुम्भूर पर्वत से नागकुमार का अपहरण कर लिया। मार्ग में नागकुमार ने भिक्षुओं को ध्यानमग्न एवं योग क्रिया में तपस्या देखा तब उन्हें देखकर नागकुमार ने कहा कि मुझे इस प्रकार के दुःख से मुक्त कीजिए, तदुपरान्त वह नीचे गिर जाता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप वह वाराणसी में जन्म लेता है।

अगे उल्लेख है कि नागकुमार प्रवर्जित होकर पूजनीय हो जाता है। वह अपने पूर्व जन्म का समर्पण करते हुए माता-पिता का समर्पण करता है। समर्पणपरान्त वह अपने पूर्व जन्म के माता-पिता को रूढ़ करते हुए देखता है और कहता है कि मैं ही नागकुमार हूँ। वह अपने पूर्व जन्म की मृत्यु के वृत्तांत को बताकर अपने माता-पिता को समर्पण कराता है। तब वे नागकुमार को नाग भवन में ले जाकर दिव्यामृत का पान कराते हैं।

अन्त में उल्लेख है कि इस नागकुमार ने काश्यप गोत्र में जन्म लेकर ब्रह्मचर्य प्रत का पालन किया और धर्मार्थरण किया। भगवान का भिक्षुओं के प्रति कथन है कि शुभकामनाओं के विपक्ष से ही भिक्षु नागकुमार ने सर्वप्रथम श्रद्धा को प्राप्त किया।

25. संघर्षक्षितावदानस्य श्रेष्ठ:

यह अवदान आलोच्य ग्रन्थ का २५वीं अवदान है। इसके प्रारंभ में ही संघर्षक्षित का ईश्वर्यशाली होना भिक्षुओं को संशय उत्पन्न कर देता है। तब भगवान उनके संशय
को दूर करने के लिए उसके सुक्मों के विषय में चर्चा करते हैं कि संघर्षकित ने पिछुओं
के लिए परिपालनार्थ उचित कार्य किये और पाँच सी वैश्यों के साथ चारिका की। यही
nहीं उसने जीवन-पर्यतन्त्र भ्रामण यात्रा का पालन भी किया।

अगे भगवान का प्रश्न आवश्यक है कि इन सभी कृत कर्मों के
विपाक से संघर्षकित ऐश्वर्यशाली हुआ था।

अवदान के अन्त में भगवान ने पिछुओं को बताया कि संघर्षकित ने जिन पाँच
सी वैश्यों के साथ चारिका की थी वे पाँच सी पिछु ही थे। उसने जीवन पर्यतन्त्र भ्रामण
यात्रा का पालन किया, उसी कर्मों के विपाक से मेरे पास प्राप्त भ्रमण की। इस प्रकार सभी
क्लेशों से सर्धों दूर रहकर उसने मेरा साधनकर किया। अगे भगवान ने पिछुओं को यह
भी बताया कि है पिछुओं! एकान्त कृत्य कर्मों का फल एकान्त कृत्य ही होता है।

26. पांशुप्रदानावदानम्

यह अवदान आलोच्य प्रण्थ का २६वीं अवदान है। इसके प्रारम्भ में भगवान का
श्रावस्ती में चारिका करते हुए उपदेश देने का उल्लेख है। अगे इस अवदान में उपगुप्त
और मार की कथा का अति नाटकीय ढंग से वर्णन मिलता है। उपगुप्त मार से कहता
है कि मैंने भगवान का धर्मकार्य देखा है सुपकाय नहीं। फलतः मार उपगुप्त को
भगवान का सुपकाय दिखाने के लिए इस वर्तमान पर तत्पर हो जाता है कि वे (उपगुप्त)
उसे देखकर प्रणाम न करें। तब मार भगवान बुद्ध का रूप धरण कर उपगुप्त के सामने आता है। वे उपगुप्त भगवान बुद्ध के उस कमनीय एवं गम्भीर रूप का दर्शन कर उन्हें प्रणाम कर लेते हैं। इस पर मार का कथन है कि आपने मेरे नियम का उल्लंघन कर दिया। प्रत्युत्तर स्वरूप उपगुप्त का कथन है कि मैंने तो भगवान को प्रणाम किया, तुमको नहीं। तदनन्तर मार उपगुप्त की अपर्यावरणा कर वहाँ से चला जाता है।

आलोच्यग्रन्थ में आगे उल्लेख है कि मणुषा निवासिनी वासवदत्ता नाम की गणिका उपगुप्त पर
ter MsT

वह उपगुप्त को बुलाने के लिए अपनी दासी को भेजती है। उपगुप्त उसके इस प्रकार बुलाने पर रूपट हो जाते हैं और वासवदत्ता गणिका को इस अशुचि शरीर का ज्ञान करते हैं। तब उन्हें कामदात में वैराग्य हो जाता है तथा वह बुख, धर्म और संघ की शरण में चली जाती है। आगे उपगुप्त का वासवदत्ता के प्रति कथन है कि चित्त की अतिर एकायुता का अधिगम ध्यान पारमिता है। एतद्वर्ष मनुष्य को एकात्मवासी होने के लिए वन का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

27. कुमालादासलम- 

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रन्थ का २७ वाँ अवदान है। अवदान के आरम्भ में उल्लेख है कि राजा अशोक का बुध शासन के प्रति अनुराग हो जाता है। इसलिए वह शाक्य पुत्रों को देखकर श्रद्धापूर्वक नमन करता है। किन्तु वह बाल उनके वश नामक अमात्य को अच्छी नहीं लगती। इसलिए वह राजा को सम्बोधित करते हुए कहता है कि
आपके लिए सभी वर्णों के सत्यासियों को प्रशान्त करना उचित नहीं है। उस समय राजा ने उस अमाय से कुछ भी नहीं कहा। कलान्तर में सभी अमायों से राजा भिन्न-भिन्न प्राणियों का सिर लाने के लिए कहते हैं और यश की मनुष्य का सिर लाने का आदेश देते हैं। तदनंतर उन सभी सिरों के विक्रम के लिए कहते हैं। लोग अन्य प्राणियों का सिर तो खरीदने के लिए तत्पर हो जाते हैं किन्तु मनुष्य का सिर नहीं। राजा ने यश से कारण पूछा? प्रत्युत्तर स्वरूप यश कहता है कि घृणा के कारण इसको किसी ने भी ग्रहण नहीं किया। राजा पुनः उससे पूछते हैं कि क्या मेरा भी सिर घृणा के योग्य है?

प्रत्युत्तर स्वरूप सकारात्मक उत्तर देने पर राजा का यश के प्रति कथन है कि तुम शाक्ति भिन्नों की जाति को ही देखते हो, उनके आत्मात्मक गुणों को नहीं। धार्मिक कार्यों में गुण देखे जाते हैं, जाति का विचार नहीं किया जाता। आगे उलेख है कि चित्त की एकांतता के कारण ही मानव शरीर निरंजन अथवा स्थूल योग्य होता है। जिस प्रकार गुण विहीन विज्ञाति को पतित कहकर अवज्ञा की जाती है, उसी प्रकार निर्विशेष नीतिक्षुलता भी शुभ गुण युक्त प्राणी प्रशान्त करने योग्य होते हैं। सत्कार गुणों एवं सदाचार के कारण होता है, न कि जाति और कुल के आधार पर। इस प्रकार राजा जन्मना जाति का खण्डन करते हैं।

28. वीतशोकावदानम्

आलोच्य ग्रन्थ का यह २८वां अवदान है। इस अवदान के प्रारंभ में उलेख है राजा अशोक के भाई वीतशोक की तीर्थ यात्रा में अभिसरीच थी। आगे उलेख है कि
राजा अशोक ने अमाल्यों को आदेश दिया कि मेरे स्नानगृह में प्रवेश करने पर वीतशोक को राजमुकुट बौधकर सिंहासन पर आस्था कर देना। अमाल्यों ने ऐसा ही किया। इस पर राजा ने वीतशोक को सिंहासन पर आस्था देखकर उसे सिंहासन ल्यागने के लिए कहा और जल्लादों की बुलाकर दण्ड देने का आदेश दिया। अमाल्यों के निवेदन पर राजा ने उसे सात दिन के लिए राज्य देकर क्षमा कर दिया है।

तदन्तर ढोल आदि बाय यन्त्र बजने लगते हैं। आगे उल्लेख है कि एक दिन बाद अशोक वीतशोक से पूछता है कि - क्या तुमने कोई अच्छा गीत, नृत्य आदि देखा? प्रत्युत्तर स्वरूप वीतशोक का कथन है कि हदय में मृत्यु के भय से मैंने न कुछ देखा और न सुना। तदन्तर राजा अशोक का वीतशोक के प्रति अभिकथन है कि - हे वीतशोक एक जन्म के मरण भय से ही राज्य लक्ष्मी प्राप्त होने का हर्ष नहीं हुआ तो मिल पुनः सैकड़ों जन्मों के मृत्यु के भय को कैसे देख सकते हैं? यह संसार जन्म-मरण के बन्धन वाला है।

राजा अशोक की इन बातों को सुनकर वीतशोक विशरणगमन की अभिलाषा व्यक्त करता है और भगवान के स्तूप की बन्धन कर धर्म कथा को सुनता है। वह प्रबंधित हो राजा अशोक के राजदरबार में भोजन ग्रहण करने के अन्तर्गत उसके लिए धर्मकथा का उपदेश देता है।

आगे उल्लेख है कि राजा अशोक ने यह घोषणा की कि जो मुझे निर्ग्रंथ का सिर लाकर देगा उसे मैं अशर्फियों डूंगा। इसी बीच वीतशोक रोगप्रस्त हो जाता है।
बीमारी की दशा में बीतशोक आभीर के घर में प्रवेश करता है। आभीर उसे निर्देशनी समझकर उसका सिर काट लेता है और राजा के पास ले जाता है। राजा बीतशोक के सिर को देख मृत्तिका हो जाता है। आगे भिक्षुओं को इस विषय में संशय होता है और वे भगवान से पूछते हैं कि बीतशोक द्वारा ऐसे कौन से कर्म किये गये जिससे उसका शिरोच्छेदन हुआ? प्रत्युत्तर स्वरूप भगवान का अभिज्ञान है कि पूर्व जन्म में यह बीतशोक एक बहेलिया था जो मृगों को जाल में फँसाकर अपनी जीतिका चलाता था।

एक बार एक प्रत्येक बुद्ध भी तालाब के किनारे पर स्थित वृक्ष के नीचे आराम कर रहा था, जिससे मृग जाल में नहीं फंसे। तब बहेलिया ने कोशिष्ट होकर उस प्रत्येक बुद्ध का अपनी तलवार से शिरोच्छेदन कर दिया। भगवान ने भिक्षुओं के संशय को दूर करते हुए कहा कि यह बीतशोक ही पूर्वजन्म में बहेलिया था जिसने मृगों को मारा और शिरोच्छेदन किया।

29. अशोकावदानम्

प्रस्तुत अवदान आलोच्य ग्रन्थ का 28वीं अवदान है। इस अवदान से पता चलता है कि राजा अशोक अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति धर्म एवं संघ के लिए दान दे देते हैं। राजा अशोक भिक्षुओं से पूछते हैं कि भगवान के शासन में सर्वाधिक दान किसने दिया। प्रत्युत्तर स्वरूप भिक्षुण्य अनाधिपिण्डद को सबसे बड़ा दानी बताते हैं। जिन्होंने सी करोड़ का दान दिया। भिक्षुओं से यह सुनकर राजा अशोक सी करोड़ का दान देने का
संकल्प लेते हैं और चौरासी हजार धर्माराजिक की स्थापना भी करते हैं। यही नहीं वह पृथ्वी, अन्तःपुर, अमाल्यगण एवं कुणाल तथा स्वर्ण को आर्य संघ के लिए समर्पित कर देते हैं।

आगे राजा अशोक का रोमी होने का उल्लेख है, उसे दुःखी और रोता हुआ देखकर राधगुत नाम का अमाल्य उससे रोने का कारण यूक्षता है? प्रत्युत्तर स्वरूप राजा अमाल्य से कहता है - भगवान के शासन में सी करोड़ दान करने का मेरे द्वारा संकल्प किया गया था, किन्तु वह पूर्ण नहीं हुआ।

आगे उल्लेख है कि जब राजा अशोक चार करोड़ की संपूर्ति करने के लिए स्वर्णादि को कुरकुट नामक उद्यान में भेजता है। वहाँ उसका पीत्र ‘सम्प्रद’ भण्डागारिक से रोक लगवा देता है। पुनः राजा अपने स्वर्ण, रजत एवं लोहे के भोज्य-पादेश को उद्यान में भेजता है तो उनकी भी मुद्रा देने से रोक लगवा देता है। अन्त में जब राजा को मिटटी के पान में भोजन भेजा गया। उस समय उनके हाथ में आधा आवला (अध ग्रामंक) पहुँचता है। राजा उसे भी संघ के लिए अर्पित कर देता है। तदुपरान्त वह स्वर्ण लोक में गमन करता है।

30. लुघनकृमादावदानम्

यह आलोच्यग्रन्थ का 30 वाँ अवदान है। इस अवदान के प्रारंभ में हस्तिनापुर के उत्तर पांचाल में ‘महाध्व’ नामक धार्मिक राजा का राज्य करने का उल्लेख है। उसका
नगर सुमस्मन एवं सभी प्रकार के भयों से मुक्त था। यथा समय वर्षा होने के कारण उसके राज्य में प्रभूत शस्त्र-सम्पत्ति का प्रादुर्भाव हो गया था। यही नहीं वह राजा सभी को सम्मान और दान देता था। दूसरी ओर इसी अवसर में अध्यमपूर्वक राज्य करने वाले दक्षिणपांचाल के राजा का भी उल्लेख मिलता है जिसके कूर्त आचरण से दुःखी जनता सदृश्मरायण राजा महाधन का आश्रय लेती थी। आगे वर्णन है कि दक्षिणपांचाल का राजा अध्यमक कोशी एवं कर्कश स्वभाव का था। वह प्रतिदिन राष्ट्रनिवासियों को पातन, बन्धन और बेड़ियों आदि से ब्रस्त किया करता था, जिसके परिणाम स्वरूप समस्त जनमानस देश का परित्याग कर भैलालकुंवक उत्तर पांचाल राजा के राज्य में निवास करने लगे।

कालान्तर में राजा महाधन को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सुधन कुमार रखा गया। तदन्तर सुधनकुमार सभी परिशाओं में निपुण और पराक्रमी हो गया। राजकुमार सुधन शिक्षा खेलते हुए ब्रह्मसभा नाम की पुष्करिणी पर पहुंचता है जो विविध प्रकार के कमलों एवं पक्षियों से सुशोभित थी। वह पुष्करिणी निर्मल एवं सुरमित जल से परिपूर्ण थी। उसमें किन्नरराज की पुत्री मनोहरा पौंच सी परिवारों के साथ स्नानार्थ के लिए जाती थी। आगे उल्लेख है कि सुधन कुमार उसी पुष्करिणी में मनोहरा को देखता है और वह उसके प्रति आस्मत हो जाता है। मनोहरा भी सुधनकुमार के प्रति स्नेह भाव दर्शाती है। तदन्तर सुधन और मनोहरा का अन्तःपुर में निवास करने का उल्लेख है। कालान्तर में पिता की आज्ञा का पालन करते हुए सुधन कुमार एक गाँव
पर विजय प्राप्त करने के लिए जाता है। सुधन कुमार जब गाँव पर विजय प्राप्त कर हस्तिनापुर वापिस लौटता है, तब वहाँ अपनी ‘मनोहरा’ न पाकर व्याकुल हो जाता है। माता-पिता तथा अन्य सभी के समझने पर कि ‘अन्त:पुर में मनोहरा से विशिष्ट और भी स्त्रियाँ हैं? किन्तु सुधन कुमार पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। एक ऋषि द्वारा मनोहरा के विषय में बताए जाने पर सुधन कुमार उसे दूँढ़ने निकला और वह उसके समीप पहुँच गया। तब किन्नरराज अपनी पुत्री मनोहरा को सुधनकुमार के लिए सीप देता है।

अवदान के अन्त भगवान का कथन है कि जो सुधन कुमार था वह है मैं ही था। सुधन कुमार को मनोहरा के लिए किये गये पुण्य कर्मों से ही हमें सम्प्रौजन हुआ।

31. तौयिकामहावदनम्

यह अवदान आलोच्य ग्रन्थ का ३७वीं अवदान है। इसके प्रारम्भ में उल्लेख है कि शुभ कर्मों का फल सदैव शुभ होता है। आगे उल्लेख है कि भगवान श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। वहाँ पर आयुष्मान आनन्द को बुलाया। उल्लेख है कि भगवान ने एक दूसरे प्रदेश में खेत में हल चलाते हुए एक ब्राह्मण को देखा जिसकी भगवान के प्रति भक्ति नष्ट हो गई थी। उस ब्राह्मण को उस महापुरुष के दर्शन मात्र से ही श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। इससे भगवान बुद्ध आति प्रसन्न हुए, और उसके द्वारा खेत में बोधे गये जो सभी स्वर्ण के हो गये। आगे उल्लेख है कि भगवान बुद्ध की अनेक प्राणियों
ने मिला - भिन्न प्रकार से पूजा अर्चना की जिसके भगवान काउन सभी के प्रति अभिकथन है कि एकान्त कृपण के कर्म का एकान्त कृपण फल ही होता है। अतः शुभ कर्म ही करने चाहिए।

32. रूपावत्यावदानम्

प्रस्तुत अवदान आलोचनायक का ३२वां अवदान है। इस अवदान में भगवान वृद्ध का सांठे तेरह सी मिश्रकों के साथ जेलवन में चारिका का उलेख है। वहं पर उनका सभी वर्गों के द्वारा स्वगत सल्कर किया जाता है। तदनन्तर भगवान उन्हें धर्मोपदेश देते हैं।

आगे उलेख है कि उत्तरापथ के जनपदों में उपलब्धति नाम की राजधानी थी। वहं भविष्कर अकाल पड़ा। उस राजधानी में रूपावती नाम की अत्यधिक सुन्दर स्त्री थी जिसके बाहर की ओर प्रस्थान करने पर एक अन्य स्त्री उसके कक्ष में प्रवेश कर पुत्र को जन्म देती है। वह भूख से व्याकुल होकर स्वयं अपने पुत्र का भक्षण करना चाहती है। उस स्त्री की ऐसी दशा को देखकर रूपावती अपने दोनों स्तनों को काटकर उसे भूख मिटाने के लिए दे देती है। आगे उलेख है कि रूपावती के पति के द्वारा सत्यवचन के प्रभाव से ही उसके स्तन पूर्ववाट प्रादूर्भूत हो जाते हैं। तदनन्तर इत्य ब्राह्मण का वेश धारण कर उपलब्धति राजधानी पहुँचते हैं और रूपावती से पूछते हैं कि स्तनों के काटने पर अर्पित कर देने से उन्हें कोई पराचालाप और दुःख तो नहीं हुआ?

68
प्रत्युत्तरस्वरूप रुपावती का कथन है कि हे ब्राह्मण! मैंने केवल बालक की रक्षार्थ अपने स्तनों को अर्पित किया था किसी भोग आदि के लिए नहीं। इसका एक मात्र प्रयोजन यह है कि मैं अनुत्तर सम्मुख सम्बोधि प्राप्त कर अवानों को आत्म-निग्रहार्थ प्रेरित करूँ। बन्धुनुक्त मनुष्यों को निर्मुक्त करूँ। अनासक्तों को आश्वस्त करूँ एवं उद्धिन्नों को सुखी करूँ। तदन्तर वह संकल्प लेती है कि मेरी स्त्रीनिधि पुष्पेन्द्रिय में परिवर्तित हो जाये। उसके इस कथनमात्र से उसकी स्त्रीनिधि पुष्पेन्द्रिय में प्रादुर्भूत हो गयी और रुपावती 'रुपावत' के रूप में जानी जाने लगी।

आगे उल्लेख है कि उत्पलावती राजधानी में पुन्नविहीन राजा के स्वर्गसमन करने पर रुपावत कुमार को राजा बनाया गया। रुपावत कुमार ६० वर्षों तक राज्य के अन्तर मरणोपरांत उत्पलावती राजधानी में एक श्रीमती गृहपति की महिष के रूप में पुत्र के रूप में जन्म लेता है और इस जन्म में उसका नाम चन्द्रप्रभ पड़ा। आठ वर्षों वह पाठशाला में अध्ययन करते हुए भगवान की ओर ध्यान लगाता है।

आगे उल्लेख है कि चन्द्रप्रभ शमशान में जाकर अपने शरीर को वध करने के लिए त्याग देता है। उसे उच्च्च नाम का श्रीमती एवं अन्त शक्ति उसके मौस का भक्षण करते हैं। आगे उल्लेख है कि वह पुन: उसी राज्य की राजधानी में महासागर की रानी के रूप में पुत्र के रूप में जन्म लेता है। ब्रह्मप्रभ नाम से जाना जाता है। वह ब्रह्मप्रभ माणवक वन में जीवनकल्याण के तप करता है तब एक गर्भिणी व्याधी उसकी कुटी के समीपस्थ शरण लेती है और प्रसवोपरांत वह अपने दोनों बच्चों का भक्षण करना
चाहती है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मण बच्चों की रक्षा के लिए अपने शरीर को उस व्यायरी के लिए अर्पित कर देता है।

33. हार्दिकर्णवदानम्

आलोच्यान्त्र का यह ३३वाँ अवदान है। इस अवदान के प्रारंभ में भगवान बुद्ध का श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डक के आराम में विहार करने का उल्लेख है। इस अवदान में चार वर्गों के साथ चाण्डाल जाति का भी उल्लेख मिलता है। आगे उल्लेख है कि पुक्कसारी नामक ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता हुआ त्रिशालकुमारदुर्ग राज से कहता है कि चार वर्गों में तुम्हारी तो कहीं गणना नहीं है क्योंकि तुम वृष्ण हो। प्रत्येकाकामुक्त नरेन्द्रकुमारदुर्ग राज का अभिव्यक्त है कि मृत्यु के अन्तर है। त्रिशालकुमारदुर्ग राज का कथन है कि सब अन्य वर्गों के लोग भी करते हैं। त्रिशालकुमारदुर्ग राज इस कथन से अनेक दृष्टिकोण के द्वारा तभी वर्गों की समानता को सिद्ध करता है और वहीं ब्राह्मणत्व की जनन श्रेष्ठता का खाद्य करता है। भगवान बुद्ध का मुझे अपने प्रति अभिव्यक्त है कि पुर्व जन्म में जो जनन ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता को अस्वीकार करने वाला त्रिशालकुमारदुर्ग राज था, मैं ही था। आगे भगवान तथागत का कथन है कि पशु-पशु तथा प्राणियों में जाति निर्धारण का आधार कर्म अथवा लिंग हैं। जिस प्रकार इन जातियों में भिन्न-भिन्न जातिमय लक्षण हैं, उसी प्रकार मनुष्यों में भिन्न-भिन्न जातिमय लक्षण
नहीं पाये जाते हैं। भगवान के कथन से स्पष्ट है कि कर्म से ही ब्रह्मण होता है और कर्म से ही अब्राह्मण।

34- दानाधिकरणमहायानसूत्र -

प्रस्तुत अवदान आलोच्यग्रन्थ का 34वां अवदान है। इस अवदान में भगवान ने श्रावस्ती के अनाथपिण्डद के जेतवन स्थित आराम में भिक्षुओं को 35 प्रकार के वादों का नामोल्लेख किया है।

35. चूड़ापक्षावदानम् -

यह अवदान आलोच्यग्रन्थ 35वां अवदान है जहाँ अवदान के प्रारम्भ में भगवान बुध का श्रावस्ती के अनाथपिण्डद के आराम में बिहार करने का उल्लेख है। वहाँ श्रावस्ती में एक ब्रह्मण के निवास की भी चर्चा हुई है जिसका पुत्र जन्म लेते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पुन: दूसरे पुत्र के जन्म लेने पर एक बुध्द के परामर्श पर उसकी माँ भिक्षुओं के द्वारा चिरायु के लिए आशीर्वाद ग्रहण करने हेतु उसे चौराहे पर रखता है और पुन: भिक्षुओं का आशीर्वाद मिलने पर उसे घर पर ले आती है। चौराहे पर रखने के कारण उसके पुत्र का नाम महापन्थक पड़ता है।

कालान्तर में वह ब्राह्मण पुनः गर्भवती होती है और पुत्र को जन्म देती है। उस बुध्द के परामर्श पर वह उसे संकीर्ण मार्ग पर रखकर भिक्षुओं के द्वारा पहले पुत्र के समान ही चिरायु के लिए आशीर्वाद ग्रहण करती है। इसलिए उसका नामकरण संकीर्ण मार्ग में रखे जाने के कारण ‘पस्थक’ रख दिया जाता है।
अन्त में उल्लेख है कि उन दोनों पुत्रों के बड़े होने पर विद्यार्थी के समय महापत्थक पढ़े हुए को शीघ्र समरण कर लेता है, जबकि मन्दबुद्धि होने के कारण पन्थक पढ़े हुए को विस्मरित कर देता है।

36. माकन्दिकावदानम्

यह अवदान आलोच्य ग्रंथ का ३६वाँ अवदान है। इस अवदान के प्रारंभ में भगवान बुद्ध का कुरु जनपद में चारिका करते हुए कल्माषद्वम्य नामक स्थान पर पहुँचने का उल्लेख है। वहाँ पर माकन्दिक नामक परिवार के निवास की भी चर्चा हुई है। उसकी अति सीमित शालीनी पुत्री थी जिसका नाम अनुपमा था। वह परिवारक अपनी पुत्री को श्रमण गौतम से पली बनाने के लिए अनुपम विनय करता है। किन्तु भगवान उसे ग्रहण नहीं करते। इस पर शिशु संस्कृत पूर्वक भगवान से पूछते है कि आपने परिवारक पुत्री को कब्ज़ा नहीं ग्रहण किया? संस्कृत को दूर करते हुए भगवान एक पूर्वजन्म की कथा के माध्यम से बताते हैं कि “एक गांव में एक लोहार रहता था। कलात्ंतर में उसकी पत्नी ने एक कन्या को जन्म दिया। जब वह बड़ी हो गयी तब लोहार ने कहा कि मैं अपनी कन्या अनुपमा को अपने से देखा शिल्पका ही दूँगा। उसी समय एक शिशु शिक्षान्त के लिए उसी लोहार के पर गया। वहाँ पर उस लोहार की पुत्री को देखता है और अपने को शिल्पका बतलाता है। तब लोहार द्वारा उसकी शिल्पका का बोध कर लेने पर वह अपनी कन्या अनुपमा को उस शिशु को देने के लिए तैयार हो जाता है। प्रत्युत्तर स्वस्त पर वह कहते हुए मना कर देता है कि “मैंने
तुम्हारे घमण्ड को चूर करने के लिए अपनी शिल्पकला को दिखाया, पुत्री ग्रहण करने के लिए नहीं। अगर भगवान का शिष्यों के प्रति कथन है कि पूर्व समय में जो माकन्दिक था वह लोहार ही था और जो अनुपमा थी वह उसकी पुत्री थी। शिष्य में ही था।

37. ऋद्धायणावदानम्

यह अवदान आदिब्रह्मण्य का ३७वाँ अवदान है। इस अवदान में राजा विभवसार और ऋद्धायण के परस्पर सीहार्दङ्ग धारम्य का उल्लेख है। दोनों में भैरोवाल है। वे परस्पर दूर दूर के माध्यम से दुर्लभ वस्तुओं का आदान प्रदान करते हैं। ऋद्धायण जहाँ विभवसार को दुर्लभ रत्नों को भेजते हैं वही विभवसार दुर्लभ वस्तुओं को उपहार स्वरूप भेजते हैं। अगर उल्लेख है कि धार्मिक राजा ऋद्धायण प्रवृत्ति ग्रहण करते समय अपने पुत्र शिखर्षिणी को राज्य सेवा देते हैं और उससे धर्मपूर्वक राज्य करने का परामर्श देते हैं। वे उससे कहते हैं कि अर्क साथ इतना विशाल जनसमूह इसलिए है कि मैंने धर्मपूर्वक राज्य किया था।

अवदान के अन्त में भगवान का शिष्यों के प्रति कथन है कि जो जिस प्रकार के कर्म को करता है वह वैसा ही फल भोगता है। अत: भगवान बुध का कथन है कि प्राणि को किसी भी किये हुए कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है बाहे वह अन्तिमें, समुद्र के बीच में और पर्वत गुफा में ही क्यों न हो।

73
38. मैत्रकन्यकावदानम् —

यह अवदान आलोच्य्सत्थ का ३८वाँ अवदान है। अवदान के आरम्भ में उल्लेख
है कि माता चिर बन्दनीया है। उसकी महिमा सवोपरि है। इसमें यह उपदेश दिया गया
है कि उसकी सेवा सदैव करनी चाहिए। आगे उल्लेख है कि माता के रोकने पर भी
मैत्रकन्यक उसकी बातों की अवहेलना कर समुद्रवतरण करने के लिए तत्पर होता है
और उस माता की अवहंग के जलस्वरूप मैत्रकन्यक को यान पात्र टूट जाने पर अनेक
विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। मैत्रकन्यक एक पुरुष के सिर पर जलते हुए चक
को घुमता हुआ देखकर उससे इसका कारण फूंछता है? वह इसे माता के दिन पर पाद
प्रहार का परिणाम बतलाता है। मैत्रकन्यक भी यान-पात्र के विदेश हो जाने पर अपनी
इन विपत्तियों को मातृतिरस्कार का ही परिणाम समझता है। वह सोचता है कि यद्यो
उस दास्तान पाप का केवल पुष्प मात्र है। वह अपने इस व्यवहार पर अति लजित होता
है और उसे लज्जा के कारण पुरुषी में प्रविष्ट हो जाना चाहता है। आगे उल्लेख है कि
मैत्रकन्यक जब रमण, सदाभन्तक नन्दन और ब्रह्मोत्तर नामक नगरों में भ्रमण कर रहा
था तब वहाँ पर अनेक अन्यराओं ने उसका स्वागत किया। इन अन्यराओं के साथ
रमण करते हुए उसे समय के बीत जाने का आभास भी नहीं होता था।

74